बुद्धि में जुआ खेलने की आदत कैसे समा गयी? आपकी इस विपत्ति को देखकर आपके धर्म पर मुझे तरस आती है।

कहते हैं कि ईश्वर ही संसार में सबसे सब कुछ करवाता है। मनुष्य कठपुतली है। ईश्वर सूत्रधार है। वही सबको नचा रहा है। जीव स्वतंत्र नहीं है। जीव जो कुछ करता है वह ईश्वर ही उससे करवा रहा है। बहुत अच्छी बात! तो ईश्वर ही मनुष्य को माया–मूढ़ बनाकर प्राणियों से प्राणियों का वध करवाता है। जैसे मनुष्य काठ, पत्थर और लोहे से काठ, पत्थर और लोहा काटता है वैसे ईश्वर माया की आड़ लेकर प्राणियों से ही प्राणियों का वध करवाता है। जैसे बालक खिलौना खेलता है, वैसे ईश्वर सभी प्राणियों का संयोग–वियोग कराकर खिलौना खेलता है। माता–पिता जैसे अपने बच्चों के साथ स्नेहमय व्यवहार करते हैं, ईश्वर वैसा व्यवहार प्राणियों के साथ नहीं करता है, अपितु वह क्रोध से भरा हुआ अज्ञानियों की तरह सबको संताप ही दे रहा है। मैं देखती हूं कि आततायी लोग मौज उड़ा रहे हैं और सज्जन सताये जा रहे हैं। हे पार्थ! ईश्वर की इस प्रकार अव्यवस्था देखकर मैं उसकी निंदा करती हूं– *धातारं गर्हये पार्थ विषमं योऽनुपश्यति* (वन ,)। ईश्वर न उचित–अनुचित का विचार कर पा रहा है और न ठीक व्यवस्था। धृतराष्ट्र के दुर्जन पुत्र को धन–राज्य देकर विधाता क्या फल पा रहा है? यदि कर्मों का फल कर्ता के साथ लगा रहता है, और यदि ईश्वर ही सब कुछ करता है, तो वह भी इस अव्यवस्थित कर्म के पाप–फल से बच नहीं सकता। दुर्बल सताये जा रहे हैं, ईश्वर कुछ नहीं कर पा रहा है।

युधिष्ठिर ने कहा–द्रौपदी! तुम्हारी मार्मिक बातें मैंने ध्यान से सुनी हैं। तुम नास्तिक मत का प्रतिपादन कर रही हो। मैं कोई धर्म का कार्य फल पाने के लिए नहीं कर रहा हूं, अपितु अपना कर्तव्य समझकर कर रहा हूं। जो गृहस्थ का कर्तव्य है वह मैं कर रहा हूं। फल पाने की इच्छा से जो शुभ कर्म करता है, वह तो व्यापारी है। उसका ऐसा करना निंदनीय है। धर्म पर अविश्वास करना, शास्त्र पर अविश्वास करना तो पतन–पथ में जाना है। तुम्हें धर्म और विधाता पर शंका नहीं करना चाहिए। केवल वर्तमान का जीवन ही नहीं है, आगे भी जीवन और कर्म–फल हैं। पुरातन धर्म पर शंका नहीं करना चाहिए। तप, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, सरलता आदि धर्म यदि निष्फल होते, तो पूर्व के श्रेष्ठतर मनुष्य उनका आचरण न करते। धर्म निष्फल नहीं होता और अधर्म भी अपना फल देता है। जो निष्काम हैं, सात्विक आहार–विहार करने वाले हैं और निर्मल तथा प्रसन्न मन वाले हैं, वे ही इस विषय को ठीक से समझ सकते हैं।

युधिष्ठिर द्रौपदी की मुख्य बात का उत्तर न दे सके कि जुआ खेलना और सब कुछ हार जाना कहां की धर्म-बुद्धि है? द्रौपदी आगे भी कहती है—राजन! न मैं धर्म की निंदा करती हूं और न ईश्वर की। मैं दुखी हूं, इसलिए प्रलाप करती हूं। मैं अभी भी चुप नहीं रहूंगी, और भी बोलूंगी। पेड़, पर्वत आदि कर्म नहीं करते, मनुष्य को तो कर्म करना चाहिए। गाय का बछड़ा भी गौ का दूध पीता है और छाया में जाकर विश्राम करता है। इसी प्रकार सब जीव कर्म करके जीवन-निर्वाह करते हैं। कर्म ही उत्थान का कारण है, जिसका साक्षी सारा जगत है। बगुला भी जलाशय के निकट ध्यान लगाता है। उसका लक्ष्य है मछली पकड़ना। धाता-विधाता भी सृष्टिपालन का उद्योग करते ही हैं। अतएव आप भी कर्म करें। धन-उपार्जन के लिए भी कर्म करना चाहिए। यदि धन का उपयोग होता रहे और उसकी आमदनी न हो, तो हिमालय-बराबर धन भी समाप्त हो जायगा। यदि मनुष्य कर्म करना छोड़ दे तो सब कुछ का विनाश हो जायगा। जो हठवादी हैं, और यह मानते हैं कि जो मिलना होगा वह अपने आप मिल जायगा, कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, अथवा यह मानते हैं कि जो पहले का किया हुआ कर्म है उसका फल अपने आप मिल जायगा, आज करना नहीं है, वे दोनों मूर्ख हैं। पुरुषार्थ-हीन निंदनीय हैं।

केवल प्रारब्ध के भरोसे सोने वाले पुरुषार्थ-हीन आलसी का विनाश वैसे ही होता है जैसे पानी में रखे हुए मिट्टी के कच्चे घड़े का। जो अनायास मिलता है वह प्रारब्ध है और जो वर्तमान में कर्म करके मिलता है वह पुरुषार्थ है। जो स्वभाव से ही कर्म करता है और उसके फल में उसे धन मिलता है वह स्वाभाविक फल है। हठ, दैव (प्रारब्ध), स्वभाव तथा कर्म से मनुष्य जो कुछ पाता है, वह सब उसके अपने आज के या पहले के कर्म के ही फल हैं। सब जीव असमर्थ हैं, ईश्वर ही प्रेरणा देकर उनसे कर्म करवाता है; यह मत उचित नहीं है। वस्तुतः मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तु का उद्देश्य रखकर कर्म करता है और उसका फल पाता है, यही युक्तियुक्त है। पुरुष और पुरुषार्थ ही फल पाने में कारण हैं। मनुष्य तिल में तेल, गाय में दूध तथा काठ में अग्नि समझकर फिर अपने परिश्रम से उन्हें प्राप्त करता है।

योग्य कर्ता द्वारा किया गया कार्य अच्छी रीति से सिद्ध होता है। यदि पुरुष और पुरुषार्थ का महत्त्व न होता तो न कोई उन्नति का काम होता और न कोई गुरु होता और न कोई शिष्य। कार्य की सिद्धि से ही कर्ता की प्रशंसा होती है। कुछ लोग कहते हैं कि हठ से ही कार्य सिद्ध होता है। कुछ लोग मानते हैं कि दैव (प्रारब्ध) से ही कार्य सिद्ध होता है। कुछ लोग पुरुषार्थ कार्य-सिद्धि का

कारण मानते हैं। कुछ कुशल लोग कहते हैं कि मनुष्य कुछ फल दैव से, कुछ हठ से और कुछ स्वभाव से प्राप्त करता है। मैं मानती हूं कि मनुष्य अपने वर्तमान कर्म से यहीं फल प्राप्त करता है। जो आलसी है वह कुछ नहीं पा सकता।

कर्म करते हुए फल नहीं मिल रहा है तो शोधना चाहिए कि कहां पर मेरे कर्म में त्रुटि है और उसे दूर करे। यदि मनुष्य संपूर्ण सावधानी से कर्म करता है, तो वह कर्म से उऋण है, निर्दोष है। आलसी दरिद्रता भोगता है और परिश्रमी ऐश्वर्य प्राप्त करता है। संशय-ग्रस्त व्यक्ति उन्नति से वंचित रह जाते हैं। संशय-रहित को सिद्धि मिलती है। संशय-रहित कर्मपरायण मनुष्य बिरले होते हैं। किसान पृथ्वी जोतकर उसमें बीज डाल देता है और संतोष करके बैठा रहता है। यदि वर्षा ने अनुग्रह नहीं किया, तो किसान का कोई दोष नहीं है। वह इसके लिए पश्चाताप नहीं करता; क्योंकि उसने अपना कर्तव्य कर लिया है। कौन जाने कर्तव्य सिद्ध न हो, ऐसा संदेह करके बैठा रहने वाला दोषी है। कर्म में त्रुटि होने पर फल कम हो सकता है। यह भी हो सकता है फल हो ही न। परंतु कर्म किया न जाय तो तब न फल होगा न कर्ता का कोई गुण प्रकट होगा। सावधान मनुष्य देश-काल के अनुसार कार्य करता है। मनुष्य अपना अवमूल्यन न करे। अपने में हीन भावना रखने वाला कोई उन्नति नहीं कर सकता।

द्रौपदी ने आगे कहा–मेरे पिता जी ने अपने घर एक ब्राह्मण को ठहराया था। उस ब्राह्मण ने मेरे पिता और भाइयों को बृहस्पति जी की बतायी हुई नीति की शिक्षा दी थी। मैं भी वहां बैठकर उसे सुनती थी (अध्याय –)।

मीमांसा

इस प्रसंग की मीमांसा में भारत विशेषज्ञ वासुदेवशरण अग्रवाल की समीक्षा दे देना काफी होगा। वे भारत-सावित्री में इस संदर्भ पर लिखते हैं–

"इस प्रसंग में महाभारतकार ने कर्म के पक्ष में प्रबल युक्तियां देते हुए जीवन में समुत्थान का प्रतिपादन किया है। यह दार्शनिक मत नियतिवादी या भाग्यवादी लोगों के उत्तर में कहा हुआ सिद्धांत था। ऊपर से सरल जान पड़ने वाले इस प्रकरण के मूल में प्राचीन दार्शनिकों के विचारों की नोंक-झोंक स्पष्ट दिखायी पड़ती है। दिष्टवाद, हठवाद, स्वभाववाद और कर्मवाद इन चार मतवादों का यहां उल्लेख किया गया है। इनमें दिष्टवाद या भाग्यवाद या नियति के मानने वाले मक्खलि गोसाल थे। बौद्ध और जैन साहित्य में विस्तार से उनके मत का वर्णन आया है। महाभारत में भी अनेक स्थानों पर उनके मत का

उल्लेख किया गया है। राजा ययाति दिष्टवादी थे (आदि पर्व)। धृतराष्ट्र का झुकाव भी कुछ इसी मत की ओर था। शांति पर्व में और भी विस्तार से नियतिवाद का विवेचन किया गया है। ऐसे लोग अनायास और निर्वेद के मानने वाले थे, जिनका उल्लेख द्रौपदी ने किया है। साथ ही सब प्राणियों में साम्यभाव और सत्यवाक्य यह भी मक्खलि गोसाल के दर्शन की विशेषता थी। स्वभाववाद अजित केश कंबली नामक दार्शनिक का मत था। हठवाद या यदृच्छावाद संभवतः पूरण कस्सप का मत रहा हो। ये तीनों ही और पकुध कच्चायन भी अक्रियवादी थे।

"द्रौपदी ने बृहस्पति के नाम से जिस कर्मवाद का वर्णन किया, वह बृहस्पति कौन थे, इस जिज्ञासा का संभावित उत्तर यह ज्ञात होता है कि लोकायत या चार्वाक दर्शन के संस्थापक बृहस्पति ही कर्मवाद के उपदेशक थे। पीछे चलकर यह दर्शन बहुत बदनाम हुआ और *'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'* के अत्यंत विकृत रूप में चार्वाक दर्शन की स्मृति बची रह गयी। वस्तुतः मूल में यह दर्शन अत्यंत लोकप्रिय था और अक्रियवादी दार्शनिकों के मुकाबले में यही दर्शन ऐसा था, जो समुत्थान, प्रयत्न एवं पुरुषार्थ के द्वारा लोक-संस्थिति और कर्मवती सिद्धि का प्रतिपादन करता था। इसी कारण यह लोकायत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका प्रतिपादन जिस हृदयग्राही शैली से किया जाता था, उसके कारण इसके अनुयायी चार्वी या चार्वाक भी कहे जाते थे। अपने मूल रूप में लोकायत दर्शन और अन्य अक्रियवादी दर्शन भी उन तत्त्वों पर आश्रित थे, जो लोकायत के लिए आवश्यक थे। जैसे मक्खलि गोसाल के दर्शन में कर्म के निराकरण (निर्वेद और अनायास) की शिक्षा होने पर भी सर्वसाम्य और सत्यवाक्य ये दो सशक्त लोकोपकारी तत्त्व थे, वैसे ही बृहस्पति के दर्शन में चक्षु से दृष्ट प्रत्यक्षफल के साथ-साथ कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन था। आगे चलकर इसके बिगड़े हुए रूप में प्रत्यक्षवाद तो रह गया, कर्मवाद लुप्त हो गया।

"महाभारत के इन संवादों में यथावसर प्राचीन दार्शनिकों के अभिमतों का सन्निवेश पाया जाता है। जिस प्रकार दीर्घनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त एवं जैनों के उत्तराध्यमन सूत्र और सूत्र कृतांग आगमों में प्राचीन विचारकों के मतों या दिट्ठियों का संग्रह है, वैसे ही ब्राह्मण-साहित्य में महाभारत में भी उस प्रकार के मतों का संग्रह है। युक्तिपूर्वक उनके दोहन से प्राचीन भारतीय दर्शन के उस युग पर बहुत प्रकाश पड़ सकेगा, जबकि उपनिषदों के उतरते हुए युग में सैकड़ों नये-नये दार्शनिक मतवादों का जन्म हुआ था और यूनान के आरंभकालीन

दर्शन की भांति भारतीय दर्शन भी नयी कल्पनाओं के उन्मेष से समृद्ध बन रहा था। सौभाग्य से महाभारत के शत–सहस्र–विस्तार में ज्ञान की वे चमकती हुई मणियां यत्र–तत्र सुरक्षित रह गयी हैं।''

. भीम की ललकार और युधिष्ठिर का उन्हें शांत करना

भीम ने कहा–राजा युधिष्ठिर! दुर्योधन ने धर्म से, सरलता से और वीरता से हमारा राज्य नहीं लिया है। उसने तो कपटपूर्ण जुए का आधार लेकर लिया है। गांडीवधारी अर्जुन द्वारा सुरक्षित हमारे राज्य को इंद्र भी नहीं ले सकता था, किंतु आपकी असावधानी से वह हमारी नजरों के सामने छिन गया। जैसे लूलों के पास से बेल–फल और पंगुलों के पास से उनकी गायें छिन जायं, वैसे आपके कारण हमारे राज्य का अपहरण हो गया। आपके शासन से हम अपने पर नियंत्रण रखकर मित्रों को दुखी और शत्रुओं को सुखी कर रहे हैं। हम आज पशु के समान वनवासी हैं। बलवान व्यक्ति वनवास नहीं करता। यह धर्म है, यह धर्म है, कहकर आप सदैव व्रत पालन में लगे रहते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप ग्लानिपूर्वक नपुंसक जैसे जीवन व्यतीत करने लग जायं। हमारे क्षमा–क्षमा रटते–रटते हमें दुर्योधन बलहीन मान रहा है। हम अपना राज्य प्राप्त करें या युद्ध में मर जायं, यही क्षत्रियों का कर्तव्य है।

परम शांति रूप मोक्ष प्राप्ति के लिए वैराग्य ठीक है, परंतु राज्य के लिए धर्म, अर्थ और काम का सेवन ठीक है। आप तो दोनों से रहित, बीच में पड़े हैं। आप क्षत्रिय हैं। मेरे और अर्जुन द्वारा धृतराष्ट्र के पुत्र रूप जंगल को कटवा डालिए। असुरगण देवताओं के बड़े भाई हैं और सब प्रकार समृद्ध हैं, परंतु देवताओं ने उन्हें छल से जीत लिया। बलवान का ही सब पर अधिकार होता है। आप भी कूटनीति का आश्रय लीजिए। राजा पृथ्वी को अपने अधिकार में करने के लिए युद्ध करता है। इसमें प्राणियों की हत्या होने से पाप होता है, परंतु वह राज्य प्राप्त कर यज्ञ करता और दान देता है। तब उस पाप से छूट जाता है। ब्राह्मणों को गांव और गायें देकर राजा पापों से मुक्त हो जाता है। राजन! आपकी जुआबाजी के कारण ही यह उपद्रव आया है कि हम अवगति में जा पड़े हैं। आप ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करवाकर हस्तिनापुर पर चढ़ाई कर दीजिए। अर्जुन के गांडीव धनुष और मेरी गदा के सामने कोई टिक नहीं सकता।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

. भीम की ललकार और युधिष्ठिर का उन्हें शांत करना

युधिष्ठिर ने कहा–भीम! तुम अपने वचन–बाणों से मेरे हृदय को पीड़ा दे रहे हो। फिर भी मैं तुम्हारी निंदा नहीं करता हूं, क्योंकि मेरे ही अन्याय से तुम लोगों पर यह विपत्ति आयी है। वस्तुतः मैंने जुआ इसी मंसा से खेला था कि मैं दुर्योधन का राज्य जीत लूंगा; परंतु पर्वतदेशीय गांधार निवासी शकुनि बड़ा मायावी है। मैं माया नहीं जानता था। इसलिए उसने मुझे जीत लिया। सम या विषम सभी पासे शकुनि की इच्छा के अनुसार पड़ते देख मैं क्रोधावेश में हो गया। यदि मैं अपने मन को रोक लेता तो ऐसी विपत्ति न आती। जब आदमी को किसी विषय में आसक्ति होती है, तो उससे वह अपने को रोक नहीं पाता है। दोष मेरा है, इसलिए मैं तुम्हारी बात का बुरा नहीं मानता हूं। यह तो द्रौपदी ने हम लोगों को दास होने से बचाया।

दुबारा जब जुआ खेलने आये, तब उसमें दुर्योधन ने एक ही शर्त रखी, कि जो हारे वह बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करे। इसको मैंने सभा में स्वीकार लिया। अब इस शर्त को बीच में कैसे तोड़ा जा सकता है? सत्य ही धर्म है, उसे कैसे तोड़ा जा सकता है?

भीम दुखी होकर पुनः युधिष्ठिर को उकसाने में लग गये। भीम ने कहा– हम लोगों ने भी बहुत से राजे और राजकुमारों को उनके राज्य से निकाल दिया है। वे सब दुर्योधन से मिल गये होंगे। वे हमें छोड़ेंगे नहीं। वे हमें खोजने के लिए बहुत–से गुप्तचर नियुक्त करके हमारा संदेश दुर्योधन को दे देंगे, फिर तो हमारे ऊपर भारी भय आ जायगा। हम लोगों के वनवास करते तेरह महीने बीत गये हैं। इन्हें तेरह वर्ष मान लें। मनीषी गण तो यह भी कहते हैं कि महीना वर्ष का प्रतिनिधित्व करता है। आप दुर्योधन पर चढ़ाई कीजिए। क्षत्रिय का यही धर्म है।

युधिष्ठिर दुखी हुए और उन्होंने भीम से कहा–तुम ठीक कहते हो; किंतु मेरी बात भी सुनो। पापमय कर्म केवल साहस के भरोसे करके पछताना होता है। दुर्योधन का भी बल कम नहीं है। खास बात है शर्त। उसका पालन करना चाहिए।

इतने में वेदव्यास आ गये। उन्होंने युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति' विद्या दी और कहा कि इसे अर्जुन को सिखा देना, फिर वह सिद्ध हो जायगा और दुर्योधन का विनाश कर देगा। इसके बाद उन्होंने राय दी कि एक जगह बहुत दिन नहीं रहना चाहिए। तुम लोगों के शिकार से इस वन के पशु बहुत नष्ट हो गये हैं। यहां के ऋषि–मुनि भी असंतुष्ट हैं; क्योंकि तुम लोगों के कारण यहां अधिक हलचल हो गयी है। अतएव तुम लोग इस द्वैतवन को छोड़कर अब पुनः काम्यक वन

को चले जाओ। इसके बाद वेदव्यास चले गये; और पांडव भी काम्यक वन चले गये (अध्याय –)।

मीमांसा

पुरोहितों के झूठे आश्वासन में पड़कर राजा लोग यह भ्रम पालते रहे कि युद्ध में किये गये हाय–हत्या का पाप ब्राह्मणों को दान करने पर कट जाता है। युधिष्ठिर की भयंकर भूल जुआ का व्यसन था, जिसका परिणाम भयंकर हुआ। वैसे वे सज्जन, सत्यवादी और शीलवान क्षत्रिय हैं जैसा कि कम क्षत्रिय होते हैं।

. अर्जुन का हिमालय और स्वर्ग में जाकर अस्त्र–शस्त्र विद्या सीखना

काम्यक वन में रहते हुए एक दिन युधिष्ठिर ने अर्जुन को एकांत में बताया कि दुर्योधन का बल महान है। अतएव एक दिन पितामह वेदव्यास ने मेरे पास आकर 'प्रतिस्मृति' विद्या दी है और कहा है कि इसे अर्जुन को दे देना। अतएव मैं तुम्हें इसे देता हूं। तुम इसे सीखकर धनुष, कवच तथा तलवार धारणकर उत्तर दिशा में जाओ और तप करते हुए मौनावलंबनपूर्वक देवताओं को प्रसन्न करो और अस्त्र–शस्त्र प्राप्त करो, तभी दुर्योधन पर विजय कर पाओगे। आज ही दीक्षा ग्रहण कर देवराज इंद्र के दर्शन के लिए प्रस्थान करो।

अर्जुन योगयुक्त होने से मन के समान तीव्रगति से चलने में समर्थ हो गये। वे एक ही दिन में गंधमादन पर्वत पार करके इंद्रकील पर्वत पर पहुंच गये। उन्होंने बहुत उच्च स्वर में गूंजती हुई वाणी सुनी–*तिष्ठ* (ठहरो)। जब अर्जुन ने ध्यान दिया तो उन्हें एक पेड़ के नीचे बैठे हुए एक महात्मा दिखायी दिये। उन्होंने अर्जुन से कहा–तुम कौन हो? तुम अस्त्र–शस्त्र लेकर यहां आये हो? यह शांत क्षेत्र तपस्या का है। यहां युद्ध नहीं होता है। तुम अपने अस्त्र–शस्त्र फेंक दो। अर्जुन ने अपने हथियार नहीं फेंके, तो महात्मा ने हंसते हुए कहा–मैं स्वयं इंद्र हूं, तुम वर मांगो। अर्जुन ने इंद्र का प्रणाम किया और कहा कि आप मुझे संपूर्ण अस्त्र–शस्त्र–विद्या की सीख दे दें। इंद्र ने कहा–जब तुम यहां तक आ गये जहां कि आना दुस्तर है, तब अब अस्त्र–शस्त्र की विद्या क्या करोगे? अब तुम इच्छानुसार उत्तम लोक मांग लो। अर्जुन ने कहा–भगवन! मैं भाइयों को वन में छोड़कर यहां अस्त्र–शस्त्र–विद्या ही सीखने आया हूं। मैं अपने शत्रुओं से वैर का बदला लिए बिना किसी उत्तम लोक में जाने का लोभ नहीं करूंगा। इंद्र ने

कहा–अर्जुन! तुम सिद्धि पाने के लिए शंकर जी के दर्शन करो और उसके लिए तप में लग जाओ। इसके बाद मैं सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र की विद्या तुम्हें दे दूंगा। तुम जब शंकर भगवान का दर्शन कर लोगे तब सिद्ध होकर स्वर्गलोक चले जाओगे। इसके बाद इंद्र अदृश्य हो गये; और अर्जुन योगयुक्त होकर वहीं रहने लगे।

इसके बाद अड़तीस ( )वां अध्याय आता है, जिसमें जनमेजय वैशम्पायन से कहते हैं कि मैं अर्जुन की यह कथा विस्तार से सुनना चाहता हूं। इसका मतलब है कि यहां कोई दूसरा लेखक-पंडित विस्तार से लिखकर जोड़ रहा है। खैर, अर्जुन विकट वन में गये। वहां उनके स्वागत में आकाश में शंख और नगाड़े की आवाज की भयंकर गूंज हुई और ऊपर से फूलों की वर्षा होने लगी। अर्जुन ने कुशघास, मृगचर्म आदि के वस्त्र पहन रखे थे और सूखे गिरे पत्र खाकर तपस्या में लग गये। एक मास तक तीन-तीन रात केवल फलाहार करते, दूसरे मास में छह-छह रात के बाद, तीसरे महीने में पंद्रह-पंद्रह रात के बाद भोजन करके बिताये। चौथा महीना केवल वायु पीकर बिताये। वे दोनों हाथ ऊपर उठाये बिना किसी सहारे के पैर के अंगूठे के बल पर खड़े होकर तपस्या करते रहे।

अर्जुन की तपस्या से निकली हुई ताप से उस वन के तपस्वी ऋषि-मुनि अत्यंत तपित हो गये और वे सब भगवान शंकर के दरबार में जाकर गोहार मचाये कि हम लोग नहीं जानते कि अर्जुन किसलिए यह घोर तप कर रहे हैं। उन्हें आप तपस्या से मुक्त कीजिए। शंकर ने ऋषि-मुनियों को सांत्वना देकर लौटा दिया और कहा कि अर्जुन की इच्छा मैं जानता हूं, उसे मैं आज ही पूरी कर दूंगा।

शंकर जी किरात वेष में धन्वा-बाण लेकर निकले। उनके साथ हजारों स्त्रियां और भूतगण थे। जब वे अर्जुन के पास पहुंचे तो एक भयंकर शूकर अर्जुन की तरफ घूर कर देख रहा था। अर्जुन ने उस पर बाण चलाना चाहा, किंतु किरात वेषधारी शंकर ने उन्हें बाण चलाने से रोका, परंतु अर्जुन ने बाण चला ही दिया। साथ-साथ शंकर ने भी अपना बाण सूअर पर चलाया। सूअर तो मर गया, परंतु अर्जुन और शंकर जी में विवाद छिड़ गया। अर्जुन ने कहा कि यह सूअर मेरा शिकार है। एक के शिकार पर दूसरे शिकारी को बाण नहीं चलाना चाहिए, अतएव मैं आपको नहीं छोड़ूंगा, अवश्य मारूंगा।

किरात वेषधारी शंकर ने कहा–हम तो वनवासी हैं, हमारा यहां विचरना सहज है, किंतु तुम इस दुस्तर वन में किस उद्देश्य से घूम रहे हो? यह सूअर

मेरा शिकार है, मेरे बाण से मरा है। इस पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। फलतः दोनों में बाताकुही बढ़ गयी और अंततः दोनों ने धन्वा–बाण सम्हाल लिया। दोनों तरफ से बाणों की वर्षा होने लगी। सारे बाण समाप्त हो गये, तब अर्जुन ने तलवार सम्हाली। वह भी जब चूर्ण हो गयी, तब वृक्ष तथा पर्वत के शिलाखंड उखाड़कर अर्जुन ने शंकर पर प्रहार किया। जब वे भी बेकार हो गये, तब दोनों में मुक्केबाजी शुरू हो गयी। यह दो घड़ी तक चली। फिर अर्जुन ने शंकर पर अपनी छाती से प्रहार किया, तो शंकर भी कम नहीं थे। उन्होंने भी अपनी छाती अड़ा दी। फिर उन दोनों में ऐसी गुत्थमगुत्थी और मारामारी होने लगी कि दोनों के शरीर से चिनगारी और धुएं निकलने लगे। अतंतः अर्जुन निष्प्राण जैसे होकर मिट्टी के लोंदे की तरह पृथ्वी पर गिर पड़े। वे एक मुहूर्त (दो घड़ी) अचेत पड़े रहे। जब वे जगे तब उन्होंने देखा कि उनका सारा शरीर खुनियाखून हो गया है।

अर्जुन ने थक–हार कर मिट्टी की वेदी पर एक शिवलिंग की स्थापना की और उसकी पूजा में जब उन्होंने फूल–माला चढ़ायी तो वह माला किरात के मस्तक पर पहुंच गयी। तब अर्जुन समझ गये कि ये किरात नहीं, भगवान शंकर हैं, अतएव वे उनके चरणों में लोटपोट गये–'*पपात पादयोः*।' इसके बाद शंकर जी ने अपना असली रूप प्रकट किया, और अर्जुन को मुंहमांगा वर दिया जिससे वे दुर्योधन पर विजय कर सकें। इसके बाद अर्जुन ने शंकर की लंबी वंदना की, क्षमा मांगी, तो शंकर ने उन्हें छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया।

इसके बाद शंकर ने कहा–अर्जुन! तुम पहले शरीर में 'नर' नामक प्रसिद्ध ऋषि थे। नारायण तुम्हारे सखा हैं। तुमने बदरिका आश्रम में हजारों वर्ष उग्र तप किया है। तुम में और नारायण विष्णु में उच्चतम तेज है। तुम्हारे समान पृथ्वी और स्वर्ग में कोई नहीं है। अर्जुन ने शंकर को प्रसन्न देखकर उनसे पाशुपत अस्त्र मांगा। शंकर जी ने वह उन्हें दे दिया। साथ–साथ उन्होंने अर्जुन को स्वर्ग लोक जाने की आज्ञा दी और स्वयं शंकर भगवान गायब हो गये।

अर्जुन ने अपने को धन्य माना। तुरंत ही यम, वरुण, कुबेर, यक्ष, देवता सब अर्जुन को देखने आये। इतने में ऐरावत हाथी पर बैठे इंद्र भी आ गये। यमराज ने कहा कि ऐ अर्जुन! तुम ब्रह्मा जी की आज्ञा से मानव–शरीर धारण किये हो। फिर सभी देवताओं ने अर्जुन को अपने–अपने दिव्य अस्त्र–शस्त्र दिये। इंद्र ने अर्जुन से कहा कि तुम्हें स्वर्ग लोक में ले जाने के लिए मातलि दिव्य रथ लेकर आ जायेगा। वहीं पर मैं तुम्हें दिव्य अस्त्र–शस्त्र दूंगा।

इतने में मातलि एक दिव्य रथ लाया, जिसे दस हजार श्वेत–पीत घोड़े खींचते थे। मातलि ने अर्जुन से कहा–आप इस पर सवार होइए। इंद्र तथा देवता

आपको स्वर्ग में देखना चाहते हैं। अंततः अर्जुन हिमालय-वासी ऋषि-मुनियों से विदा लेकर इंद्र के रथ पर बैठकर स्वर्ग में पहुंचे। स्वर्ग में यज्ञध्वंसक, शराबी, गुरुपत्नीगामी दुरात्मा तथा मांसाहारी नहीं पहुंच सकते। स्वर्ग सर्वत्र संगीत से गूंज रहा था। अर्जुन स्वर्ग की अमरावती नगरी में प्रवेश किये। वहां देवताओं के हजारों विमान खड़े थे और हजारों इधर-उधर आते-जाते थे। वहां देवताओं, गंधर्वों, सिद्धों तथा महर्षियों ने अर्जुन का स्वागत-सत्कार किया। वहां सर्वत्र अर्जुन का स्तवन हो रहा था। रथ से उतरकर अर्जुन इंद्र के पास पहुंचे। इंद्र ने अर्जुन को अपनी बांहों में भरकर सीने से लगा लिया और हाथ पकड़कर अपने सिंहासन पर बैठा लिया। इंद्र ने अर्जुन का मस्तक सूंघा। अर्जुन इंद्र के पास बैठे हुए, दूसरे इंद्र लगते थे। इंद्र अर्जुन को बारंबार सांत्वाना देते हुए उनके हाथ को थपथपाने लगे और उनके मुख का स्पर्श किया। हजारों अप्सराएं वहां अलग-अलग जगहों पर नाचने लगीं। देवताओं तथा गंधर्वों ने अर्घ्य देकर अर्जुन का पूजन किया। इंद्र अर्जुन को देखते नहीं अघाते थे। इंद्र के घर में रहकर अर्जुन शस्त्र-विद्या सीखने लगे। अर्जुन ऐसे शस्त्रों की सीख पाये जिनके चलाने पर भारी गड़गड़ाहट की आवाज होती थी जिससे आकाश में बादल घिर आते और मयूर नाचने लगते थे।

अस्त्र-विद्या सीख लेने पर अर्जुन को अपने भाइयों और कुंती की अधिक याद आने लगी; किंतु इंद्र के आग्रह से वे वहां पांच मानुषी वर्ष तक रुक गये। इस बीच इंद्र की आज्ञा से अर्जुन ने चित्रसेन से बजाने, गाने और नाचने की भी कला सीखी। इतना होने पर भी वे माता कुंती और भाइयों की याद करके बेचैन हो जाते थे।

एक दिन इंद्र ने देखा था कि अर्जुन उर्वशी अप्सरा को एकटक दृष्टि से देख रहे हैं। अतएव उन्होंने चित्रसेन से कहा कि उर्वशी को अर्जुन की सेवा में भेजो। चित्रसेन ने उर्वशी अप्सरा के पास जाकर उनसे अर्जुन के गुणों का सात श्लोकों में बखान किया। अंततः उर्वशी राजी होकर तथा सजधज कर अर्जुन के पास पहुंच गयी। अर्जुन ने उर्वशी को देखकर लज्जा से नजर नीची कर ली और उसको प्रणाम किया और कहा कि मैं तुम्हारा सेवक हूं। आज्ञा दें, क्या सेवा करूं। यह सुनकर उर्वशी के होश-हवास उड़ गये। उसने जब काम-जनित हाव-भाव दिखाया तो अर्जुन ने कहा—तुम मेरी माता सदृश हो। उस दिन इंद्र सभा में जो मैंने तुम्हें एकटक दृष्टि से देखा था वह यह सोचकर कि उर्वशी ही पुरुवंश की जननी है। उर्वशी ने कहा—यह स्वर्गलोक है। यहां किसी के साथ अप्सराओं को परदा नहीं है। पुरुवंश के पोते-नाती तपस्या करके यहां आते हैं

और वे हमारे साथ रमण करते हैं। अर्जुन ने पुनः वही बात दोहरायी कि तुम मेरी मां तुल्य हो। इस पर उर्वशी ने अर्जुन को शाप दिया कि तुम्हें स्त्रियों के बीच में नचनिया बनकर रहना पड़ेगा। तुम नपुंसक कहलाओगे और तुम्हारे सारे आचार-विचार हिजड़ों जैसे रहेंगे। तुम एक वर्ष नचनिया बनकर हिजड़ा रूप में रहोगे। उसके बाद पुरुष रूप में हो जाओगे।

लोमश ऋषि घूमते हुए स्वर्ग लोक चले गये और उन्होंने देखा कि अर्जुन क्षत्रिय होकर इंद्र के साथ उनकी गद्दी पर बैठे हैं। लोमश ऋषि के मन का भाव समझकर इंद्र ने उन्हें बताया कि अर्जुन साधारण मनुष्य नहीं हैं। ये कुंती से उत्पन्न मेरे पुत्र हैं। कुछ कारण-वश शस्त्र-विद्या सीखने यहां आये हैं। नर-नारायण नाम से प्रसिद्ध जो पुरातन मुनीश्वर हैं वे ही क्रमशः अर्जुन और कृष्ण हैं। ये ही देवताओं का काम बनाने के लिए भूतल पर अवतार लिए हैं।

इंद्र ने लोमश से कहा–आप कृपया भूलोक में जाइए और काम्यक वन में इस समय रहने वाले युधिष्ठिर से मिलिए और उन्हें बताइए कि वे अर्जुन के लिए कोई चिंता न करेंगे। वे शीघ्र ही शस्त्र-विद्या सीखकर युधिष्ठिर के पास पहुंच जायेंगे। इंद्र ने लोमश से और कहा कि आप युधिष्ठिर को लेकर उन्हें तीर्थों में भ्रमण कराइए और उनकी रक्षा कीजिए। इंद्र की यह बात मानकर लोमश ऋषि भूतल पर युधिष्ठिर के पास आ गये (अध्याय –)।

मीमांसा

अर्जुन की महिमा बढ़ाने के लिए यह लंबा प्रसंग पांचरात्र भागवतों द्वारा जोड़ा गया है जो केवल कल्पना का लड्डू है। वासुदेवशरण अग्रवाल भी लिखते हैं–"स्पष्ट ही अर्जुन के विषय में यह कथानक पांचरात्र भागवतों के प्रभाव से निर्मित हुआ है।"

अग्रवाल जी आगे और लिखते हैं–"इसी आरण्यक (वन) पर्व के वें अध्याय में पच्चीस श्लोकों का अति संक्षिप्त एक कथानक है, जिसमें कहा गया है कि काम्यक वन में पांडव कृष्ण के साथ रहते थे। कभी एकांत में भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि अर्जुन कहां गये हैं और द्रौपदी के दुख की ओर ध्यान दिलाते हुए क्षात्रधर्म की आवश्यकता पर जोर दिया गया और लड़कर दुर्योधन को मारने का वही प्रस्ताव किया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, और

. **भारत सावित्री, पृष्ठ**

युधिष्ठिर ने भी केवल तीन श्लोकों में वही ठंडा उत्तर दिया कि तेरह वर्ष बाद समय आने पर हम अवश्य दुर्योधन को मारेंगे। इसी के बाद वहां बृहदश्व ऋषि आ गये।

"ज्ञात होता है कि मूल कथा का सूत्र इतना ही था। उसी का साहित्यिक विस्तार ऊपर किया गया। किस प्रकार बृहदश्व ऋषि ने युधिष्ठिर से नलोपाख्यान का वर्णन किया है।"

ऊपर अग्रवाल जी ने जिस संस्करण से लिखा है उसमें उक्त पाठ वां है और उसमें केवल पचीस श्लोक हैं; परंतु जिस गीताप्रेस गोरखपुर के संस्करण से यह पुस्तक लिखी जा रही है उसमें यहां बावन ( )वां अध्याय है और इसमें उन्सठ ( ) श्लोक हैं, जिसकी कथा आगे प्रस्तुत है।

. नलोपाख्यान की प्रस्तावना

अध्याय से तक धृतराष्ट्र के मनस्ताप और पांडवों का वन में आहार का वर्णन है। आगे वें अध्याय में भीम ने युधिष्ठिर से कहा–आपने अर्जुन को तपस्या के लिए भेज दिया। हम सबके प्राण अर्जुन में ही बसते हैं। यदि अर्जुन न रह गये तो पुत्रों सहित पांचाल, हम पांडव, सात्यकि और श्रीकृष्ण नष्ट हो जायेंगे। हम बाहुबल से संपन्न हैं, श्रीकृष्ण हमारे रक्षक हैं, तो भी आपके ठंडे विचार के कारण हम अपने क्रोध को मारकर चुपचाप रह जाते हैं। आपके जुए के दोष के कारण हम लोग समर्थ होते हुए भी दीन बन गये हैं। हमें जो भेंट में अपार धन मिला था, उसका उपभोग दुष्ट दुर्योधन कर रहा है। राजन! आप क्षत्रिय-धर्म पर ध्यान दीजिए। शठ को शठता से ही मारना चाहिए। युधिष्ठिर ने भीम को प्यार देते हुए और उनका मस्तक सूंघकर उनसे कहा–भीम, इसमें संदेह नहीं है कि तुम अर्जुन को लेकर तेरहवें वर्ष के बाद दुर्योधन पर चढ़ाई करके उसे मार डालोगे। परंतु जो तुम यह कहते हो कि सुयोधन को मारने का समय आ गया है, वह ठीक नहीं है। तेरह वर्ष की शर्त है। शर्त के अनुसार काम करना चाहिए। मैं झूठ का सहारा नहीं ले सकता। युधिष्ठिर जब ऐसी बातें कर ही रहे थे, महर्षि बृहदश्व वहां आ गये।

महर्षि के स्वागत-सत्कार के बाद युधिष्ठिर ने उनसे पूछा–महाराज! क्या मेरे जैसा अभागा राजा दूसरा भी हुआ है? मैं तो समझता हूं कि मेरे जैसा दुखी

. **भारत सावित्री, पृष्ठ**

कोई नहीं हुआ होगा। बृहदश्व ने कहा–महाराज! आप से अधिक दुखी राजा नल हुए हैं। निषध देश के राजा वीरसेन थे। उनका पुत्र नल था। सुना जाता है कि राजा नल को उनका भाई पुष्कर छल से जुआ–खेल में हराकर उनका सब कुछ जीत लिया था। इसलिए नल अपनी पत्नी दमयंती के साथ वनवास में चले गये। नल के पास तो कुछ भी नहीं था, केवल पत्नी थी। आपके पास पत्नी तो है ही, चार भाई हैं, ब्राह्मण समाज है। अतएव आपसे अधिक दुखी नल थे। अतएव आपको शोक करना ठीक नहीं है (अध्याय)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"संक्षेप में नल की कथा इतनी ही थी, किंतु महाभारत के शतसाहस्री संहिता वाले अंतिम संस्करण में कथा का वह मूलबीज नलोपाख्यान नामक सुंदर काव्य के रूप में विकसित हुआ। भाषा और कथा–प्रवाह दोनों की दृष्टि से नलोपाख्यान महाभारत का अत्यंत उत्कृष्ट अंश है। यूरोप की अनेक भाषाओं में पृथक रूप से इसके अनुवाद हो चुके हैं। मानवीय दुख–सुख के मार्मिक स्थलों से भरे हुए कितने ही स्थल इस कथा में आते हैं। ज्ञात होता है नियतिवादी दार्शनिक के तरकश का एक अचूक बाण यह नलोपाख्यान था, जिसमें बड़े–बड़ों को चक्कर में डाल देने वाले भाग्य की करतूत का प्रभावशाली दृष्टांत पाया जाता है।"

. नल और दमयंती का विवाह

बृहदश्व ने कहा–निषध देश के वीरसेन के पुत्र नल हुए हैं जो एक प्रतापवान राजा थे। वे सद्‌गुण संपन्न, रूपवान तथा घुड़सवारी में भी निपुण थे। इधर विदर्भ देश में राजा भीम राज्य करते थे। उनके दम, दांत और दमन नाम के तीन पुत्र और दमयंती नाम की एक अति सुंदरी और गुणवान पुत्री थी। लोग दमयंती के पास नल की और नल के पास दमयंती की प्रशंसा करते रहते थे कि पृथ्वी पर ये दोनों सद्‌गुण संपन्न तथा अनुपम रूप–सौंदर्य संपन्न हैं। अतएव इन दोनों के मन में बिना एक दूसरे को देखे ही एक दूसरे के लिए मोह उत्पन्न हो गया। एक दिन राजा नल दमयंती के मोह में व्याकुल–चित्त होकर अंतःपुर के समीपवर्ती उपवन में बैठे थे। इतने में उनकी दृष्टि हंसों पर पड़ी, और उन्होंने

. **भारत सावित्री, पृष्ठ, ।**

एक हंस को पकड़ लिया। हंस ने कहा–राजन! आप मुझे मारें मत, मैं आपका प्रिय कार्य करूंगा। मैं विदर्भ देश में जाकर राजकुमारी दमयंती के सामने आपके गुण एवं सौंदर्य की ऐसी प्रशंसा करूंगा कि वह आपके सिवा किसी को नहीं चाहेगी।

राजा ने हंस को छोड़ दिया। हंस विदर्भ देश में गया, और दमयंती के राजभवन के उपवन में पहुंचकर दमंयती से मिला और कहा–राजकुमारी! निषध देश में नल नाम का राजा है, उसके समान शील और सौंदर्य का संसार में कोई नहीं है। यदि तुम उसकी पत्नी हो जाओगी तो तुम्हारा रूप-सौंदर्य सफल हो जायगा। हमने देखा है तो लगा देव, गंधर्व, मनुष्य, नाग, राक्षस आदि किसी वर्ग में नल जैसा रूपवान नहीं है। तुम नारियों में रत्नस्वरूप हो और नल पुरुषों में मुकुटमणि है। दमयंती ने हंस से कहा–तुम ऐसी ही बात नल के सामने भी कहना। हंस ने निषध देश में आकर नल के सामने दमयंती की बात कही। पाठक ध्यान दें, निषध देश सिंध क्षेत्र है जो आज-कल पाकिस्तान में पड़ता है और विदर्भ देश महाराष्ट्र है।

दमयंती ने जब से हंस द्वारा नल की प्रशंसा सुनी, तब से वह उसके लिए बेचैन रहने लगी। विदर्भ-नरेश भीम ने पुत्री की मनोदशा जानकर उसके विवाह के लिए सोचा और स्वयंवर की घोषणा कर दी। अनेक राजे-महाराजे भीम के राजद्वार पर आने लगे। राजा उन सबका सत्कार कर राजभवन में ठहराता था। नारद और पर्वत ये दोनों देव ऋषि स्वर्ग में जा पहुंचे और वहां पर दमयंती के रूप-सौंदर्य तथा उसके स्वयंवर की बात कही, तो इंद्र, अग्नि, वरुण और यम भी दमयंती के लिए ललचा गये और वे अपने विमानों पर सवार होकर विदर्भ में आ धमके। इधर नल पहुंचे। दोनों की मुलाकात हो गयी। देवता लोग राजा नल के रूप-सौंदर्य को देखकर चकित रह गये और वे लोग दमयंती को पाने की आशा छोड़ बैठे। फिर साहस बटोरकर उन्होंने नल से कहा–नल! आप सत्यव्रती हैं। आप हमारी सहायता कीजिए। आप हमारा दूत बनकर जाइए। नल ने कहा–ठीक है, मैं आपका काम करूंगा। परंतु बताइए, आप कौन हैं, मुझे किसके पास आपका संदेश ले जाना है, और संदेश क्या है?

इंद्र ने कहा–मैं इंद्र हूं। मेरे साथ ये अग्नि, वरुण और यम हैं। तुम जाकर दमयंती को बताओ कि हम चारों उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए आये हैं। हम चारों में से दमयंती किसी एक को अपना पति चुन ले। नल ने कहा–मैं भी इसी उद्देश्य को लेकर आया हूं, अतएव एक ही उद्देश्य के लिए मुझे दूत बनाकर वहां

मत भेजिए। जो किसी स्त्री को पाना चाहता है, वह उसको दूसरे के लिए कैसे छोड़ सकता है?

सभी देवता एक साथ नल को डपट लिए–कैसे नहीं दूत-कर्म करोगे, जबकि तुम हमारा कार्य सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा कर चुके हो? इसलिए शीघ्र ही दमयंती के पास जाओ और हमारा संदेश उसे दो, देर न करो। नल ने कहा–विदर्भ-नरेश के राजभवन पर जर्बदस्त पहरा है। मैं उसमें कैसे जा सकूंगा? देवताओं ने कहा–तुम वहां चले जाओ। नल विवश होकर दमयंती के भवन में गये। नल ने दमयंती को देखा और वे मोहासक्त हो गये; परंतु उन्होंने अपने मन को वश में रखा। वहां की सारी सुंदरियां नल के रूप-सौंदर्य को देखकर चकित रह गयीं।

दमयंती ने मुस्करा कर नल से पूछा–तुम कौन हो? तुम्हें देखकर मैं अत्यंत मोहित हो गयी हूं। तुम देवता के समान कहां से आये हो? हमारा महल तो बहुत सुरक्षित है, तुम कैसे घुस आये? नल ने कहा–मैं नल हूं। इंद्र, अग्नि, वरुण और यम ने मुझे दूत बनाकर भेजा है। वे चारों तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं। अतएव तुम उन चारों में से किसी एक को चुन लो। उन्हीं देवताओं के प्रभाव से मैं यहां घुस आया हूं, मुझे कोई देख न सका। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो।

दमयंती ने देवताओं का नमस्कार कर मुस्कराते हुए नल से कहा–महाराज! आप ही मेरा पाणिग्रहण करें। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूं? मैं और मेरा जो कुछ है, वह आपका है। आप विश्वासपूर्वक मुझे अपनायें। यदि आप मुझे अपनी न बनायेंगे, तो मैं विष, अग्नि, जल या फांसी के सहारे प्राण त्याग दूंगी। नल ने कहा–तुम्हें पाने के लिए देवता आये हैं, तो उनके सामने मैं मनुष्य क्या मूल्य रखता हूं। दमयंती ने कहा–मैंने सभी देवताओं का नमस्कार कर आप ही को पति रूप चुना है। ऐसा कहकर दमयंती कांपने लगी। नल ने कहा–मैं इस समय दूत रूप में हूं, अतएव तुम मेरे साथ वही बरताव करो जो मेरे दूतत्व रूप के अनुसार हो। दमयंती ने धीरे से कहा–मैंने आपको पति रूप में चुनने का उपाय निकाल लिया है, जिससे आपको दोष नहीं लगेगा। आप सभी देवताओं और नरेशों के साथ स्वयंवर की रंगभूमि में पधारें; मैं वहां आपका स्वयं वरण कर लूंगी।

नल ने देवताओं के पास जाकर ज्यों-का-त्यों कह दिया जैसा उससे और दमयंती से बातचीत हुई थी। सभा जुटी। सभा में पांच पुरुष एक समान थे। वे थे नल और चार देवता–इंद्र, अग्नि, वरुण और यम। दमयंती समझ नहीं पाती

थी कि नल कौन है। अतएव उसने उन पांचों के सामने कहा–मैंने राजा नल को अपना पति चुना है। अतएव मुझे देवता लोग स्वयं नल का परिचय करा दें। फिर देवताओं की कृपा से दमयंती ने नल को पहचान लिया और उसके गले में माला डाल दी। देवता लोग खुश हुए और सब नल को वरदान देकर स्वर्ग चले गये।

नल और दमयंती का विवाह हुआ। नल कुछ दिन ससुराल में रहकर दमयंती सहित अपने देश निषध चले गये। समय पर दमयंती से एक पुत्र पैदा हुआ और एक पुत्री भी पैदा हुई, जिनके नाम क्रमशः इंद्रसेन और इंद्रसेना रखे गये। राजा नल अपने राज्य का सुखपूर्वक पालन करते रहे (अध्याय –)।

मीमांसा

हंस एक पक्षी है। वह न मनुष्य की बुद्धि रख सकता है और न मनुष्य की भाषा बोल सकता है। नल और दमयंती की प्रशंसा मनुष्यों से ही होना संभव है। इंद्र, अग्नि, वरुण, यम आदि वैदिक देवता हैं जो प्राकृतिक शक्ति हैं और जड़ हैं। इनका काव्यात्मक वर्णन वेदों में हुआ है जिससे लगता है कि ये व्यक्ति हैं। इनको नल के बीच में घसीटकर लेखक ने नल की केवल बड़ाई की है। न कहीं स्वर्गलोक है और न कोई आने-जाने तथा बात बतियाने वाले देवता हैं। यह सब काव्यात्मक घटाटोप है।

. कलियुग का नल पर प्रकोप

देवता लोग स्वर्ग जाते समय रास्ते में कलियुग और द्वापर को आते देखे। इंद्र ने कहा–हे कलि! द्वापर के साथ कहां जा रहे हो? कलि ने कहा–दमयंती के स्वयंवर में उसे मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा। इंद्र ने कहा–उसका स्वयंवर हो चुका। वह नल के साथ चली गयी। इतना सुनना था कि कलि क्रोधबबूला हो गया। उसने कहा–देवताओं के रहते हुए दमयंती ने मनुष्य को पति चुना है, इसे मैं नहीं सह सकता। इंद्र ने कहा–दमयंती ने हमारी आज्ञा से नल को पति के रूप में चुना है। राजा नल सर्व सद्गुण संपन्न हैं। अतएव महाराज नल को जो नीचे गिराना चाहेगा उसका नरक होगा। इंद्र कलियुग और द्वापर से ऐसा कह कर स्वर्ग चले गये। पीछे कलियुग ने द्वापर से कहा–मैं अपना क्रोध रोक नहीं सकता। मैं नल में निवास करूंगा और तुम्हें जुए के पासे में निवास करके मेरा सहयोग करना चाहिए।

कलियुग राजा नल के इर्दगिर्द घूमने लगा। वह उसमें दोष खोजता था, परंतु बारह वर्षों तक उसने उसमें कोई दोष नहीं पाया। बारह वर्ष के बाद एक बार नल मूत्रत्याग कर आये और हाथ-मुंह धोकर और कुल्ला करके संध्योपासना करने बैठ गये। उन्होंने पैर नहीं धोये, अतएव कलि को यह एक दोष उनमें दिख गया, और चट दे वह नल की देह में घुस गया। कलियुग ने एक दूसरा रूप बनाया, और जाकर पुष्कर से कहा कि तुम चलकर राजा नल से जुआ खेलो। पुष्कर नल का भाई था। कलियुग ने कहा कि तुम मेरी सहायता से जुआ खेल में नल का सारा राज-पाट जीतकर निषध-नरेश बन जाओगे। पुष्कर नल के पास चला। साथ में कलियुग सांड़ बनकर चला। पुष्कर ने नल से कहा–आओ, हम दोनों जुआ खेलें। नल उसकी चुनौती को नहीं सह सका, और जुआ खेलने बैठ गया। राजा नल दावं रखे हुए धन हारता चला गया। प्रजा के प्रतिनिधि और मंत्री आकर कितना ही जुआ रोकने का प्रयास किये, परंतु नल जुआ के नशा में प्रमत्त होकर किसी का कहा नहीं माने। दमयंती ने भी रोकर जुआ खेल से नल को रोकने का प्रयत्न किया, परंतु उसने किसी की बात न सुनी।

दमयंती ने लोगों से कहा–मैं इसमें राजा नल का कोई दोष नहीं मानती हूं। यह दैव का ऐसा विधान है या नियति ही ऐसी है। उसने अपने सारथि से कहा कि राजा नल पर अब भारी विपत्ति आने वाली है। तुम मेरे दोनों बच्चों को रथ पर बैठाकर कुंडिनपुर को चले जाओ और इन बच्चों, रथ और घोड़ों को मेरे भाई-बंधुओं के हवाले करके चाहे तुम वहीं रह जाओ या अन्यत्र चले जाना। सारथि ने दमयंती की उक्त बातें मंत्रियों को बताकर दोनों बच्चों को रथ पर बैठाकर विदर्भ को प्रस्थान किया। सारथि विदर्भ पहुंचकर दोनों बच्चों, घोड़ों और रथ को विदर्भ नरेश को समर्पित कर राजा नल के लिए शोक करता हुआ घूमता-घामता अयोध्या चला गया। अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण का सारथि बनकर अपनी जीविका चलाने लगा (अध्याय -)।

मीमांसा

कलियुग और द्वापर कोई जानदार व्यक्ति नहीं हैं। ये काल्पनिक कालखंड हैं। नलोपाख्यान का लेखक घोर नियतिवादी एवं दैववादी है। वह दमयंती के मुख से भी यही बात कहलाता है कि जुआ खेलने में नल का कोई दोष नहीं है। क्योंकि उसमें कलि घुस गया था। वस्तुतः जुआ खेलना नल की दुर्बुद्धि थी जो उन्हीं के अज्ञान की उपज थी। पेशाब करने के बाद नल पैर बिना धोये

संध्योपासना में बैठ गये, इतनी-सी गलती को लेकर कलियुग का इतना बड़ा प्रकोप दिखलाना लेखक का बचकानापन है। यह पहले कहा गया है कि कलियुग कोई जानवर नहीं, अपितु काल्पनिक कालखंड है जो पौराणिक है।

. दमयंती की सहनशीलता और पतिपरायणता अद्‌भुत

नल सब कुछ जुआ में हार गये। पुष्कर ने हंसकर कहा–क्या फिर जुआ खेलना शुरू हो? तुम्हारे पास दमयंती के अलावा तो कुछ भी नहीं है। यदि चाहो तो दमयंती को दावं पर लगाकर जुआ खेल सकते हो। पुष्कर की उक्त बातें सुनकर नल को बड़ा दुख हुआ, परंतु मौन रहा और अपने शरीर के सारे आभूषण उतार दिये और चादर भी उतारकर वहीं छोड़ दी तथा राजभवन से निकलकर नल चल दिये। पीछे दमयंती भी चल पड़ी। दोनों के शरीर पर केवल एक-एक ही वस्त्र थे। वे दोनों नगर के बाहर तीन रात टिके रहे; परंतु पुष्कर की घोषित बातों को ध्यान में रखकर कोई नल का सत्कार नहीं किया। पुष्कर ने घोषणा कर दी थी कि नल का जो सत्कार करेगा वह मेरे द्वारा मार दिया जायेगा। नल-दमयंती तीन रात केवल जल पीकर गुजारे।

नल दमयंती के साथ वहां से चल दिये। एक जगह पक्षी बैठे थे। नल ने अपना वस्त्र शरीर से खोलकर उन पक्षियों पर डाल दिया कि इन्हें पकड़कर इन्हीं को भोजन बना लूं। परंतु वे पक्षी उस वस्त्र को लेकर उड़ गये और आकाश से बोले–ओ मूर्ख नल! हम पक्षी नहीं, जुआ के पासे हैं। तुम्हारे वस्त्र का अपहरण करने के लिए ही हम यहां आये थे। तुम्हारे नंगे हो जाने में हमें प्रसन्नता हो रही है।

नल बहुत दुखी हुआ। उसने दमयंती से कहा–क्रोध के कारण मेरा ऐश्वर्य छिन गया। आज मुझे भोजन-वस्त्र भी नहीं मिल रहे हैं। मैं तुम्हारे हित की बातें कहता हूं–ये बहुत से मार्ग हैं जो दक्षिण दिशा को जाते हैं। यह मार्ग ऋक्षवान पर्वत को पार कर अवंती देश को जाता है। यह विंध्य पर्वत दिखायी दे रहा है। यह पयोष्णी नदी है। यहां प्रचुर मात्रा में फल-फूल उपलब्ध हैं। यह विदर्भ देश का रास्ता है। और वह कोसल देश का रास्ता है। दक्षिण दिशा में इसके बाद का देश दक्षिणा पथ कहलाता है।

दमयंती ने कहा–राजन! आपके यह सब कहने का मतलब क्या है? आप राज्यहीन हैं, भूखे-प्यासे हैं, शरीर पर वस्त्र नहीं है। आप अत्यंत पीड़ित हैं। ऐसी दशा में मैं आपको छोड़कर कैसे अपने मायके विदर्भ चली जाऊं? आपकी

पीड़ा में मैं आपको सांत्वना देकर संतोष दूंगी। पत्नी पति के दुख की दवा है। नल ने कहा–तुम शंका क्यों करती हो? मैं तुम्हें नहीं त्याग सकता। दमयंती ने कहा–तब आप मुझे विदर्भ का रास्ता क्यों दिखाते हैं? यदि आप भी विदर्भ चलें तो मैं चल सकती हूं। विदर्भ–नरेश आपका पूरा आदर–सत्कार करेंगे।

नल ने कहा–इसमें कोई संदेह नहीं है कि विदर्भ–नरेश जैसे तुम्हारे पिता हैं वैसे मेरे भी हैं, परंतु मैं इस विपत्ति में वहां नहीं जा सकता। मैं एक दिन राजा था। तब विदर्भ जाकर तुम्हारा हर्ष बढ़ाया था। आज मैं विपत्तिग्रस्त हूं, फिर वहां कैसे जा सकता हूं?

वे दोनों चलते–चलते एक सार्वजनिक सूने भवन में पहुंचे। वे दोनों थके थे, अतएव नंगी भूमि पर लेट गये। दमयंती को तो नींद आ गयी। नल का मन उद्विग्न था इसलिए उनको नींद नहीं आयी। वे नाना विचारों में खो गये–राज्य गया, ऐसा करने से मेरा क्या होगा, और यह न करने से क्या होगा? मेरा मर जाना अच्छा है कि दमयंती को त्याग देना अच्छा है। वह मेरे लिए दुख उठा रही है। यदि मेरे से अलग हो जाय तो हो सकता है वह अपने मायके जाकर सुख से रहे। अंततः नल ने निश्चय किया कि दमयंती को त्याग देने में उसकी भलाई है।

नल नंगे थे। दमयंती केवल एक वस्त्र पहने सो रही थी। नल ने सोचा कि दमयंती का आधा वस्त्र काटकर अपना अंग ढक लूं। उन्होंने अपनी नजर दौड़ायी, तो उस भवन में एक तलवार टंगी हुई दिखी। नल ने उसे उतारकर दमयंती का आधा वस्त्र काट लिया और उससे अपना शरीर ढक लिया और दमयंती को सोते छोड़कर नल चल दिये।

जब दमयंती जगी, तब वह नल को न देखकर विलाप करने लगी। वह अपने दुख की चिंता न कर नल के लिए चिंता करती कि उनको दुख में कौन संतोष देगा। वह इधर–उधर दौड़कर नल को खोजने लगी। जंगली क्षेत्र था। एक बड़ा अजगर मिल गया। उसने दमयंती का पैर पकड़ लिया और पैर की तरफ से उसे निगलने लगा। दमयंती जोर से रोने लगी। उसकी आवाज सुनकर एक जंगली मनुष्य आ गया जो शिकारी था, जानवरों का शिकार करने के लिए घूम रहा था। उसने आकर तलवार से अजगर को काट दिया। इस प्रकार दमयंती इस खतरे से बच गयी। परंतु वह शिकारी सुंदरी दमयंती के साथ बलात्कार करने पर उद्यत हो गया। परंतु दमयंती अपने सत्य के तेज से उसका निवारण कर आगे बढ़ गयी और इस खतरे से भी वह बच गयी। इसके आगे वन पर्व का चौसठ ( )वां अध्याय है जिसमें कुल एक सौ बत्तीस ( )

श्लोक हैं। इसमें दमयंती का विलाप तथा नल के लिए प्रेम-विरह का वर्णन है। अध्याय के अंत में आता है कि दमयंती को व्यापारियों का एक दल मिलता है। दमयंती पूछती है कि आप लोग कहां जा रहे हैं? व्यापारियों के दल के सरदार ने कहा–हम चेदि-नरेश के जनपद (आज के जबलपुर) में जा रहे हैं। हमारा वहां जाने का उद्देश्य है व्यापार में धन कमाना।

दमयंती उन व्यापारियों के साथ चलकर रास्ते में एक सरोवर पर जब उनका पड़ाव हुआ तो वह भी वहां रुक गयी। रात का समय था, जंगल से हाथियों का एक बड़ा झुंड आया जो प्रायः सरोवर में पानी पीने आता था, उसने व्यापारियों को रौंद डाला। व्यापारियों को लगा कि यह नारी (दमयंती) कोई राक्षसी, यक्षी अथवा कोई भयंकर पिशाची है। यही यहां कृत्या बनकर आयी है और उसी का किया हुआ यह उपद्रव है। व्यापारियों का यह वचन सुनकर दमयंती लज्जा से गड़ गयी। वह किसी प्रकार सबकी नजरों से छिपकर चेदिनगर में राजभवन के पास आ गयी। पुरवासियों ने उसे उन्मत्ता की तरह देखा। लोग उसके चारों तरफ आकर उसे घेर लिए।

राजमाता ने राजमहल से दमयंती को देखा। राजमाता ने अपनी धाय से कहा–जाओ, इस युवती को मेरे पास ले आओ। इसे लोग परेशान कर रहे हैं। यह दुखी लगती है। मुझे इसका रूप ऐसा लगता है कि यह मेरे घर को प्रकाशित कर देगी। यह पागल-सी दिखती है, किंतु इसका व्यक्तित्व विशाल है। धाय जाकर लोगों को हटाकर दमयंती को राजमहल में राजमाता के पास ले आयी। राजमाता ने पूछा–तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? तुम असहाय दशा में रहकर कैसे निर्भय हो?

दमयंती ने कहा–माता! मैं मानव कन्या हूं। मैं अपने पति के चरणों में अनुराग करने वाली हूं। अंतःपुर में काम करने वाली मेरी 'सैरंध्री' जाति है। मैं सेविका हूं, और जहां इच्छा होती है वहां रहती हूं। इसके बाद दमयंती ने बताया कि मेरे पतिदेव जुआ खेल में अपना सब धन-माल खोकर मेरी सोती अवस्था में कहीं चले गये हैं। राजमाता ने कहा–तुम मेरे भवन में रहो, मेरे सेवक तुम्हारे पति की खोज करेंगे। अथवा यह भी हो सकता है कि तुम्हारा भटकता हुआ पति स्वयं यहां आ जाय। तुम मेरे पास रहकर अपने पति को पा लोगी।

दमयंती ने कहा–माता! मेरी आपके पास रहने की शर्त रहेगी; वह यह है– मैं किसी का जूठा नहीं खाऊंगी, किसी का पैर नहीं धोऊंगी, और किसी भी दूसरे पुरुष से किसी तरह बातचीत नहीं करूंगी। यदि कोई पुरुष मेरा दैहिक संबंध चाहे तो वह आपके द्वारा दंडनीय हो, और यदि वह दोबारा ऐसी चेष्टा

करे तो उसे आप प्राणदंड दें। मैं अपने पति की खोज के लिए केवल ब्राह्मण से मिल सकती हूं। यदि ऐसी व्यवस्था आप कर सकें, तो मैं आपके पास रह सकती हूं।

राजमाता ने कहा–बेटी! तुम्हारा ऐसा उत्तम व्रत है, मैं यह सब करूंगी। इसके बाद राजमाता ने अपनी पुत्री सुनंदा से कहा कि तुम सैरंध्री को देवी तुल्य मानो। यह तुम्हारी सखी होकर रहेगी, तुम इसके साथ आनंदित रहो। इसके बाद दमयंती सुनंदा के भवन में आयी। सुनंदा ने दमयंती की इच्छा के अनुसार व्यवस्था करवा दी, अतएव दमयंती वहां शांतिपूर्वक रहने लगी (अध्याय –)।

मीमांसा

नल ने युधिष्ठिर-जैसी दुर्बुद्धि नहीं अपनायी कि वह जुआ के दावं पर दमयंती को रख दे। पक्षी नल का वस्त्र लेकर उड़ गये और बताये कि हम पक्षी नहीं, जुआ के पासे हैं, तुम्हारा वस्त्र छीनने के लिए पक्षी बनकर आये थे। यह एक काव्यात्मक कथन है। जुआ के पासे न पक्षी बनेंगे न मनुष्य-भाषा बोलेंगे। इसका अर्थ इतना ही है कि जुआड़ी नंगा होगा ही। दमयंती एक पतिव्रता नारी है और नारियों का आदर्श है।

. कर्कोटक नाग से नल को आश्वासन

नल जब दमयंती को सोयी हुई दशा में छोड़कर निकले तो उनको गहन वन मिला। उस में दावाग्नि लगी थी। उसमें से जोर की आवाज आयी–'राजा नल, दौड़िए, मुझे बचाइए।' नल दौड़े, तो देखा एक नागराज (सर्प) कुंडली मारकर सो रहा है। नागराज ने हाथ जोड़कर कहा–राजन! मुझे कर्कोटक नाग समझिए। मेरी गलती से एक बार नारद मुनि ने मुझे शाप दे दिया था कि तुम एक जगह स्थावर वृक्ष की तरह पड़े रहोगे। जब राजा नल आयेंगे तब वे तुम्हें यहां से अलग ले जायेंगे। तब तुम्हारा उद्धार होगा। मैं नारद के शाप से एक पग भी चल नहीं सकता। आप मुझे बचाइए। मैं आपको हितकारी उपदेश दूंगा। फिर नागराज अंगूठे के बराबर हो गया। नल उसे उठाकर वहां ले गये जहां दावानल नहीं था। नागराज ने कहा–राजा नल! आप चलते समय कुछ पैर गिनते हुए चलिए। नल गिनकर पैर उठाने लगे–एक, दो, तीन। जब उन्होंने कहा–दस, तुरंत नाग ने उन्हें डंस लिया। उसके डंसते ही नल का शरीर गौर से श्यामवर्ण हो गया। राजा नल को आश्चर्य हुआ।

नागराज ने कहा–राजन! मैंने आपको डंस कर आपका रंग–रूप इसलिए बदल दिया है कि लोग आपको पहचान न सकें। जिस कलियुग ने आपके शरीर में घुसकर आपको कष्ट दिया है, अब वह आपके शरीर में विष से व्याप्त होकर बहुत दुख से रहेगा। मेरा विष कलियुग को जीर्ण–शीर्ण करेगा और वह दुख से रहेगा। मेरी कृपा से अब आपको दाढ़ों वाले जंतुओं, शत्रुओं और वेदवेत्ता ब्राह्मणों के शाप से भय नहीं होगा। आपको अब न विष व्याप्त होगा और न युद्ध में आपकी हार होगी। अब आप अयोध्या–नरेश ऋतुपर्ण के यहां जाइए और आप अपने को बाहुक नाम का सूत बताइए। ऋतुपर्ण जुआ–विद्या में निपुण हैं। आप ऋतुपर्ण को अश्व–विद्या की शिक्षा दीजिए और उनसे जुआ–विद्या की शिक्षा प्राप्त कीजिए। फिर आप अपने राज्य, पत्नी, बच्चे सब प्राप्त कर लेंगे। जब आप अपने पहले वाले रूप को देखना चाहें तब मेरा स्मरण कर लीजिएगा और मैं आपको दो वस्त्र देता हूं, इसको ओढ़ते ही आप अपना पहले वाला रूप प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार कर्कोटक नागराज नल को सीख और वस्त्र देकर गायब हो गया (अध्याय)।

मीमांसा

उक्त कर्कोटक नाग की पूरी कहानी केवल मनःकल्पित है। यह इसलिए है कि नल का रंग–रूप बदलकर उसका अवध–नरेश के यहां बाहुक नाम का सूत बनकर रहना संभव हो। किसी के शाप देने पर कोई मनुष्य सर्प नहीं हो जायेगा और सर्प मनुष्य की भाषा नहीं बोलेगा। यह सब कल्पना कहानी को सुगम बनाने की योजना है।

. दमयंती और नल की खोज

नल दस दिन चलकर अयोध्या पहुंचे और अवध–नरेश ऋतुपर्ण से मिले। नल ने बताया कि मेरा नाम बाहुक है, मैं समय का मारा हूं, अर्थ–संकट में हूं, आपके यहां सेवा करना चाहता हूं। मैं अश्वविद्या में निपुण हूं, अनेक कला का मुझे ज्ञान है। मैं भोजन भी अच्छा बना सकता हूं। ऋतुपर्ण ने बाहुक को रख लिया और उसका वेतन दस हजार मुद्राएं प्रति वर्ष निर्धारित कर दिया। राजा ऋतुपर्ण ने बाहुक से कहा–वार्ष्णेय और जीवल, दोनों सारथि तुम्हारी सेवा में रहेंगे। तुम मेरे यहां इन दोनों के साथ सुखपूर्वक रहो।

बाहुक (नल) दमयंती के स्मरण में यह एक श्लोक प्रतिदिन सायंकाल कहा करते थे–"भूख–प्यास से पीड़ित और थकी–मांदी वह तपस्विनी उस

मंदबुद्धि पुरुष का स्मरण करती हुई कहां सोती होगी तथा अब वह किसके समीप रहती होगी?"

एक रात जीवल ने पूछा–बाहुक! तुम किस स्त्री के लिए नित्य प्रति शोक करते हो? बाहुक ने संध्या भाषा में कहा–एक ऐसा मंदबुद्धि पुरुष है जो अपनी पतिव्रता पत्नी का तिरस्कार कर इधर–उधर भटक रहा है।

विदर्भ–नरेश भीम को जब पता लगा कि मेरा दामाद जुआ में सब कुछ हार कर दमयंती के साथ कहीं चला गया है, तब उसने ब्राह्मणों को बहुत–सा धन देकर इधर–उधर उन्हें खोजने के लिए भेजा। सुदेव नाम के ब्राह्मण ने पता लगाते हुए चेदि नगरी के राजमहल में दमयंती को देखा और उसे पक्का निश्चय हो गया कि यह दमयंती है, तब वह उसके निकट गया और कहा–दमयंती! मैं तुम्हारे भाई का प्रिय सखा सुदेव हूं। मैं महाराज भीम की आज्ञा से तुम्हें खोजने आया हूं। तुम्हारे माता, पिता, भाई सकुशल हैं। तुम्हारे पुत्र–पुत्री कुंडिनपुर के राजमहल में आनंद से रह रहे हैं। तुम्हारे माता–पिता, बंधु–बांधव तुम्हारी चिंता में दुखी हैं। दमयंती ने भी सुदेव को पहचान कर अपने माता–पिता तथा बंधु–बांधवों का कुशल–मंगल पूछा। फिर दमयंती फूट–फूट कर रोने लगी। सुनंदा ने जाकर राजमाता से कहा कि सैरंध्री एक ब्राह्मण से मिलकर बहुत रो रही है। राजमाता ने आकर सैरंध्री से बात की। सैरंध्री तो दमयंती निकली। राजमाता ने आंसू बहाते हुए कहा–बेटी दमयंती! तू मेरी बहिन की पुत्री है। तुम्हारी माता का विवाह विदर्भ–नरेश भीम से हुआ, और मेरा विवाह यहां चेदिनरेश से हुआ। तुम्हारा जन्म तो दशार्ण देश में मेरे पिता के घर पर ही हुआ था और मैंने अपनी आंखों से देखा था।

दमयंती ने राजमाता से कहा–मौसी! तुम मुझे पहचानती नहीं थी, तब मैं तुम्हारे घर में बड़े सुख से रही। मैं तुम्हारे यहां ही रहूं, तो कोई अड़चन नहीं है, किंतु मैं बहुत दिनों से प्रवास में भटक रही हूं। मेरे बच्चे कुंडिनपुर में ही हैं; माता–पिता भी मेरे लिए दुखी हैं; अतएव अब मुझे विदर्भ जाने के लिए आज्ञा दें। मेरे लिए एक वाहन का प्रबंध कर दें और मैं माता–पिता के पास चली जाऊं।

राजमाता ने दमयंती के जाने के लिए पालकी का प्रबंध करा दिया और साथ में रक्षा के लिए कुछ सैनिकों की टुकड़ी भेज दी। दमयंती विदर्भ पहुंचकर

. **क्व नु सा क्षुत्पिपासार्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी।**
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वा साद्योपतिष्ठति

(वन पर्व, अध्याय , श्लोक)

अपने माता-पिता, बंधु-बांधवों तथा बच्चों से मिलकर प्रसन्न हुई। राजा भीम ने दमयंती का पता लगाकर उसे लाने वाले सुदेव ब्राह्मण को एक गांव, एक हजार गायें तथा धन देकर संतुष्ट किया।

दमयंती ने अपनी माता से कहा–माता! यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो तो राजा नल की खोज कराओ। रानी ने राजा भीम से यह बात कही। राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर नल की खोज करने के लिए आदेश दिया। ब्राह्मण लोग दमयंती के पास जाकर बताये कि हम राजा नल की खोज में जा रहे हैं, आप इस संबंध में जो कुछ कहना चाहें, वह कहें। दमयंती ने ब्राह्मणों से कहा–आप सभी देशों में घूम-घूम कर मनुष्यों के समूह में कहें–"ओ जुआरी प्रियतम! तुम जुआ में सब कुछ हारकर और अपनी पत्नी को सोते समय में उसे छोड़कर और उसका आधा वस्त्र फाड़कर कहां चले गये? वह आज भी उसी अवस्था में रहकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम अपनी प्यारी पत्नी पर कृपा करो और उसे उत्तर दो।" यह किसी को पता नहीं चलना चाहिए कि आप लोग मेरी आज्ञा से बात कर रहे हैं। जब कहीं से इसका उत्तर मिले तब मुझे शीघ्र आकर बताओ।

कुछ समय के बाद पर्णाद नाम का ब्राह्मण घूमकर आया और दमयंती से कहा–मैं घूमते-खोजते अयोध्या गया। वहां की राजसभा में मैंने तुम्हारी कही हुई बात को दोहराया, तो कोई उत्तर नहीं दिया। जब मैं अवध-नरेश ऋतुपर्ण से विदा लेकर लौटने लगा, तब ऋतुपर्ण नरेश के यहां रहने वाला एक आदमी जिसका नाम बाहुक है, तुम्हारी बातों का उत्तर दिया। वह महाराज ऋतुपर्ण का सारथि है। वह छोटे-छोटे हाथों वाला और कुरूप है। वह अश्वविद्या में निपुण तथा पाकशास्त्र में कुशल है। बाहुक रोया और कहा–"उत्तम स्त्रियां संकट में पड़कर भी आत्मरक्षा करती हैं। वे पति की गलतियों से उस पर क्रोध नहीं करती हैं।" बाहुक की बात सुनकर मैं शीघ्र चला आया।

दमयंती को उक्त बातों से नल का आभास हुआ। उसने माता से कहा–पिता जी को इसका कोई पता न चलना चाहिए। मैं सुदेव ब्राह्मण को राजा नल की खोज में लगाऊंगी। दमयंती ने पर्णाद ब्राह्मण को इनाम-इकराम देकर संतुष्ट किया और उसका उपकार माना तथा नल के आ जाने पर उसको और धन देने का आश्वासन देकर विदा किया। पश्चात उसने सुदेव ब्राह्मण को बुलाया और कहा–सुदेव! तुम द्रुतगामी वाहन से अयोध्या जाओ और राजा ऋतुपर्ण को बताओ कि विदर्भनरेश भीम की पुत्री दमयंती का कल ही स्वयंवर होने वाला है। उसमें अनेक राजकुमार आ रहे हैं। यदि इच्छा और संभव हो तो आप भी

आइए। कल दमयंती दूसरे पति का वरण कर लेगी, क्योंकि राजा नल का कोई पता नहीं है कि वह जीवित है या मर गया। सुदेव ने अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्ण से उक्त बातें कहीं।

अवधनरेश ऋतुपर्ण ने बाहुक सारथि से कहा–"बाहुक! तेज घोड़ों का रथ शीघ्र तैयार करो। मैं आज ही विदर्भ जाना चाहता हूं। वहां दमयंती का कल ही स्वयंवर है।" उक्त बातें सुनकर बाहुक अत्यंत दुखी हो गया। बाहुक (नल) कल्पना करने लगा–"क्या दमयंती ऐसा कह या कर सकती है? हो सकता है, दुख से पीड़ित होकर ऐसा कार्य कर डाले। ऐसा भी हो सकता है कि मुझे पाने के लिए उसने यह उपाय सोच निकाला हो। मेरा अपराध भयंकर है, अतः पुनः पति का चुनाव कर सकती है। परंतु मेरा दिल यह नहीं कहता कि वह ऐसा करेगी, क्योंकि वह संतान वाली भी है। यह तो विदर्भ पहुंचकर पता लगेगा कि क्या सच है और क्या गलत। मैं अपने लिए ही राजा ऋतुपर्ण की यात्रा को पूर्ण करूंगा।

बाहुक ने अश्व–शाला से अश्वों को निकाला। बाहुक ने राजा ऋतुपर्ण से कहा–जिस घोड़े के ललाट में एक भंवर हो, मस्तक में दो, पार्श्व भाग में दो, उपपार्श्व भाग में भी दो, छाती में दोनों ओर दो–दो और पीठ में एक; इस प्रकार बारह भंवरियों वाले घोड़ों को चुनकर रथ में जोतना चाहिए। राजा रथ पर बैठा। वार्ष्णेय सारथि भी बैठा, परंतु बाहुक ने ही रथ को हांका और वायुवेग से विदर्भ की दिशा में रथ चल पड़ा।

वार्ष्णेय सारथि बगल में बैठा सोच–निमग्न हो गया–"यह बाहुक तो अश्वविद्या में राजा नल की तरह है। यदि यह नल नहीं है, तो नल के समान अश्व–विद्या का बहुज्ञ है। " घोड़े रथ को तीव्रगति से ले जा रहे थे। उसी समय राजा ऋतुपर्ण का उत्तरीय वस्त्र (चादर) कहीं गिर गया। राजा ने रथ रोकने की बात कही। बाहुक ने कहा–राजन! उत्तरीय वस्त्र चार कोस पीछे गिर चुका है। अब वहां लौटना संभव नहीं।

वन में रथ चल रहा था। एक बहेड़े का वृक्ष दिखा। उसमें बहुत फल लगे थे। राजा ऋतुपर्ण ने बहेड़े के पत्ते और फलों की संख्या बात–बात में गणना करके बता दी। राजा ने उसमें पांच करोड़ पत्ते तथा दो हजार पंचानबे फल बताया। अंततः गणना करने पर वही संख्या ठहरी। राजा ऋतुपर्ण जुआ–विद्या और गणित–विद्या में निपुण था। बाहुक ने ऋतुपर्ण से कहा–आप मुझे जुआ–विद्या की सीख दें और मुझसे अश्वविद्या की सीख लें। राजा ऋतुपर्ण ने अश्व–विद्या के ज्ञान के लोभ से बाहुक की बात स्वीकार ली और उसको जुआ खेलने

की विद्या दे दी और बाहुक से कहा कि अश्व-विद्या को अपने पास मेरी धरोहर रूप में रहने दो।

जब बाहुक को जुआ खेलने की निपुणता आ गयी, तब कलियुग उसके शरीर से निकल गया। वह कर्कोटक नाग के तीव्र विष को अपने मुख से बारंबार उगलने लगा। इस कलियुग के प्रभाव से राजा नल की बुद्धि खराब हो गयी थी। कलियुग जब विष के प्रभाव से मुक्त हुआ तब उसने अपना रूप प्रकट किया। तो नल कुपित होकर उसको शाप देना चाहे। कलियुग कांपता हुआ भयातुर हो हाथ जोड़कर कहा–महाराज! आप मुझ पर क्रोध न करें। मैं आपको उत्तम कीर्ति प्रदान करूंगा। जो आपकी कथा-कीर्तन करेगा, उसके ऊपर मेरा विष प्रभाव नहीं करेगा।

उक्त बातें कहकर कलियुग बहेड़े के पेड़ में लीन हो गया। इसलिए बहेड़े का पेड़ निंदित हो गया। फिर बाहुक (नल) घोड़ों को हांककर विदर्भ की ओर बढ़े।

अवधनरेश राजा ऋतुपर्ण को राजद्वार पर आया हुआ सुनकर विदर्भ-नरेश भीम ने आकर उनका स्वागत किया, उन्हें राजभवन में ठहराया। ऋतुपर्ण ने न वहां राजाओं का जमघट देखा, न ब्राह्मणों की चहलकदमी देखी और न स्वयंवर का कुछ चिह्न देखा। अवधनरेश हक्के-बक्के रह गये। राजा भीम ने स्वागत के बाद राजा ऋतुपर्ण से आने का कारण पूछा, तो ऋतुपर्ण ने बहाना बनाते हुए कहा–"राजन! मैं आपको प्रणाम करने आ गया।" राजा भीम मुस्करा दिये और मन में सोचने लगे कि अवधनरेश बहुत-से गांवों को पार कर सौ योजन से भी अधिक दूरी की यात्रा करके आये हैं, और उसका कारण बहुत साधारण बता रहे हैं। बात समझ में नहीं आती। अच्छा, जैसा हो, पीछे पता चल ही जायगा। विदर्भनरेश ने अवधनरेश से विश्राम करने के लिए आग्रह किया। अवधनरेश के साथ वार्ष्णेय राजभवन में चला गया और बाहुक घोड़ों की सेवा करके रथ के पिछले भाग में जा बैठे (अध्याय -)।

मीमांसा

राजा नल के शरीर में कलियुग का घुसना और फिर ऋतुपर्ण से पूरी द्यूत-विद्या सीख लेने पर कलियुग का निकल जाना और बातचीत करना घोर काल्पनिक है। यह नियतिवादियों की कल्पना है जिसमें माना जाता है कि मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, वह पूर्व नियति के अधीन है। परंतु यह गलत धारणा है। नल का जुआ खेलना और सब कुछ हार जाना उनकी अपनी दुर्बुद्धि का परिणाम था, जो उन्हीं का बनाया था।

. नल तथा दमयंती का मिलन तथा नल की राज्य-प्राप्ति

दमयंती ने बाहुक के पास अपनी केशनी नाम की दूती को भेजा और उससे कह दिया कि यह बाहुक नल का बदला हुआ रूप लगता है। इससे धीरे से बात करके पता लगाओ कि यह कौन है। केशनी गयी और उसने बाहुक से कहा–आपका कुशल-समाचार पूछती हूं। दमयंती की बातें सुनिये। दमयंती जानना चाहती है कि आप अयोध्या से कब चले और किसलिए चले? यहां क्यों आये? बाहुक ने कहा–अवधनरेश दमयंती के स्वयंवर की बात सुनकर यहां आये हैं। मैं उनका सारथि हूं। केशनी ने कहा–आपके साथ वह तीसरा व्यक्ति कौन है? वह कहां से आया है? आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? आप यह काम कब से करते हैं? बाहुक ने कहा–तीसरे व्यक्ति का नाम वार्ष्णेय है। वह नल का सारथि है। नल जब वन में चले गये तब वह अवधनरेश की सेवा में चला गया। मैं अश्व-विद्या में निपुण हूं और सारथि-कार्य में भी, इसलिए अवधनरेश मुझे वेतन देकर रख लिए। केशनी ने कहा–क्या वार्ष्णेय राजा नल के विषय में जानता है कि वे कहां हैं। क्या इस विषय में आपसे उसने कुछ बातें की हैं? बाहुक ने कहा–वार्ष्णेय नल के दोनों बच्चों को यहां रखकर अवध-नरेश के पास चला गया। वह नल के विषय में कुछ नहीं जानता कि वह कहां है। नल को कोई नहीं जानता कि वह कहां गया। उसका पहला रूप खो गया है। वह संसार में गूढ़ भाव में रहता है। "नल का आत्मा ही जानता है कि वह कहां है अथवा उसका अंतःकरण जानता है। क्योंकि राजा नल अपने लक्षणों को किसी के सामने नहीं प्रकट करता है।"

केशनी ने कहा–जब पहली बार ब्राह्मण अयोध्या में गया था, तब उसने स्त्रियों की सिखायी बात कही थी–"ओ जुआरी प्रीतम! तुम अपनी प्रियतमा पत्नी को सोती छोड़कर और उसका आधा वस्त्र फाड़कर कहां चले गये। तुम्हारी वह प्रियतमा उसी अवस्था में रहकर तुम्हारे लिए व्याकुल है। तुम मुझे उत्तर दो।" ऐ बाहुक! ब्राह्मण से उक्त बात सुनकर जो उसको उत्तर दिया था, उसको पुनः कहो।

उक्त बातें सुनकर बाहुक दुख से व्यथित हो गया और रोने लगा। उसने कहा–उत्तम स्त्रियां संकट में भी अपनी रक्षा करती हैं। वे पति से त्यागी जाने

. आत्मैव तु नलं वेद या चास्य तदनन्तरा।
न हि वै स्वानि लिंगानि नलः शंसति कर्हिचित् वन. ,

पर भी उस पर क्रोध नहीं करती हैं। ऐसा कहते-कहते बाहुक रोता रहा।

केशनी ने आकर दमयंती को सब बताया। दमयंती ने पुनः बाहुक के पास भेजकर उसकी चेष्टाओं का उसके गुण-कर्मों की परख करवायी। अंततः दमयंती ने पिता राजा भीम और माता की आज्ञा लेकर बाहुक को राजभवन में बुलाकर उससे बातचीत की। पता लगने पर दमयंती ने कहा–आपने विवाह के समय मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनाया था, वह आपकी प्रतिज्ञा कहां चली गयी? नल ने कहा–जो मेरा राज्य छिन गया और मैंने तुम्हें त्याग दिया, वह सब कलियुग का प्रभाव था। मैंने कुछ नहीं किया था। अब कलियुग मुझे छोड़कर चला गया है, इसलिए मैं तुम्हें प्राप्त करने के लिए आया हूं। कोई भी स्त्री अपने अनुरक्त एवं भक्त पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का वरण कैसे कर सकती है? जैसा कि तुम करने जा रही हो? तुम्हारा स्वयंवर सुनकर अवध-नरेश ऋतुपर्ण बड़ी उतावली से यहां आये हैं।

नल की उक्त बात सुनकर दमयंती कांप उठी और बोली–आप मुझ पर संदेह न करें। मैंने देवताओं को छोड़कर आपका वरण किया है। जब ब्राह्मण द्वारा अयोध्या में आपके रहने का आभास लगा तब मैंने आपको पाने के लिए यह उपाय सोचा कि एक ही दिन के बाद होने वाले स्वयंवर का समाचार देकर अवधनरेश को बुलाया जाय। एक ही दिन में आप ही अपनी अश्व-विद्या के बल से अयोध्या से यहां अवधनरेश को ला सके हैं। यह आपको पाने का उपाय था। मेरा मन आपको छोड़कर कभी दूसरे पुरुष में नहीं गया है। इसके साक्षी वायु, सूर्य और चंद्रमा हैं। इसके बाद वायु ने नल से कहा–दमयंती ने कभी कोई पाप नहीं किया है। हम तीनों इसके साक्षी हैं। तुम अपनी पत्नी दमयंती से शंकारहित होकर मिलो।

वायु देवता के ऐसा कहने पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और दुंदुभियां बजने लगीं। नल ने नागराज कर्कोटक का स्मरण किया और उसके दिये हुए वस्त्र को ओढ़ लिया। बस, तुरंत वह अपने पूर्व सुंदर रूप को प्राप्त हो गया। तीन वर्षों के दुखद प्रवास के बाद चौथे वर्ष नल-दमयंती मिलकर वैसे अत्यंत प्रसन्न हो गये जैसे आधी जमी हुई खेती से भरी पृथ्वी वर्षा का जल पाकर हरी-भरी हो जाती है।

इसके बाद अवधनरेश ऋतुपर्ण राजा नल से अश्व-विद्या की सीख लेकर अयोध्या चले गये। और नल एक महीना कुंडिनपुर में रहकर तथा श्वसुर भीम से आज्ञा लेकर दमयंती और बच्चों के साथ निषध देश चले गये। जब राजा नल निषध देश जा रहे थे तब उनके रथ के चारों ओर सोलह हाथी, पचास घोड़े और छह सौ सैनिक चल रहे थे।

राजा नल निषध देश जाकर अपने छोटे भाई पुष्कर को ललकारा कि तुम आकर मुझसे जुआ खेलो और अपना धन, राज्य सब दावं पर रखो और मैं भी अपना धन जो साथ में लाया हूं, दमयंती सहित दावं पर रखूंगा। यदि जुआ नहीं खेलते हो, तो मेरा और तुम्हारा युद्ध होगा। जो जीते उसका राज्य होगा। अंततः दोनों भाइयों में जुआ–खेल हुआ। पुष्कर धन–राज्य सब हार गया। राजा नल ने पुष्कर से कहा–मैं तुम्हारे राज्य को तुम्हें लौटाता हूं। मैं केवल अपना ही राज्य लेता हूं। तुम जाओ अपने राज्य में सौ वर्ष तक आनंद से जीओ। राजा नल ने उसको छाती से लगाकर प्यार दिया। पुष्कर बड़े भाई नल का प्यार पाकर एक महीना तक नल के पास ही टिका रहा। उसके बाद वह नल के चरणों में अभिनंदन करके अपने राज्य में चला गया।

इसके बाद उन्नासी ( )वां अध्याय आता है जो फलश्रुति में है। कर्कोटक नाग, दमयंती, नल तथा ऋतुपर्ण की कथा और कीर्तन कलियुग के दोष का नाश करने वाला है (अध्याय)।

मीमांसा

नल को कलियुग के कारण दुख उठाना पड़ा, यह भोंड़ी कल्पना करने वालों की धारणा है। नल अपनी दुर्बुद्धि से राज्य से वंचित हुए और दमयंती का त्याग किये। पुरुष प्रायः अत्याचार करता है, स्वयं दुखी होता है और पत्नी को भी दुखी करता है। और पुरुष ही पत्नी पर अविश्वास करता है। वायु, सूर्य, चंद्रमा तो जड़ हैं। ये किसी के साक्षी नहीं हो सकते; वस्तुतः अंतरात्मा ही अपना साक्षी है और इसमें दमयंती पूर्ण उत्तीर्ण है। आकाश से सुमन वृष्टि और बाजा बजना काव्य है।

कर्कोटक नाग के स्मरण तथा उसके दिये कपड़े ओढ़ने से नल का प्रथम रूप आ जाना कहानी की संगति बैठाने की कल्पना है। रूप, आकार किसी के नहीं बदलते हैं, अवस्थांतर से शरीर में बदलाव आता है वह स्वाभाविक है। नल के छोटे भाई के साथ उदार विचार और व्यवहार अत्यंत प्रशंसनीय हैं। यह बात कौरव–पांडव में नहीं आ सकी। कथा के अंत में फलश्रुति आने का अर्थ है कि यह नलोपाख्यान स्वतंत्र काव्य रहा, जो किसी समय महाभारत में आकर जुड़ गया।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"नलोपाख्यान के अंत की यह फल–श्रुति सहेतुक है। महाभारत और पुराणों में जहां–जहां फलश्रुति प्राप्त हो, उस

उपाख्यान को बाद में जोड़ा हुआ समझना चाहिए। प्राचीन ग्रंथ-निर्माण-शैली की यह मान्य पद्धति थी।"

. पुलस्त्य द्वारा भीष्म के लिए कहे गये तीर्थों का विवरण

अर्जुन काम्यकवन से युधिष्ठिर की आज्ञा से अस्त्र-शस्त्र की प्राप्ति के लिए हिमालय में तप करने चले गये; अतएव उनके बिना चारों पांडव और द्रौपदी दुखी रहते थे। इन सबको लग रहा था कि हमें इस काम्यकवन को छोड़कर कहीं अलग चले चलना चाहिए। इसी बीच देवर्षि नारद आ गये। पांडवों ने उनका सत्कार किया। नारद ने युधिष्ठिर से कहा–बताइए, मैं आप लोगों को क्या दूं? युधिष्ठिर ने कहा–महाराज! जो लोग तीर्थयात्रा में तत्पर होकर पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं उन्हें क्या फल मिलता है? नारद ने कहा–एक समय महर्षि पुलस्त्य ने गंगाद्वार (हरद्वार) में भीष्म को जो सुनाया था, वही प्रसंग मैं तुम लोगों से कहता हूं। महर्षि पुलस्त्य ने भीष्म से कहा–तीर्थयात्रा ऋषियों के लिए बहुत बड़ा आधार है। "जिसके हाथ, पैर और मन अपने वश में हैं और जो विद्या, तप और कीर्ति से संपन्न है, जो दान नहीं लेता, प्राप्त में संतुष्ट है, जो अहंकार-शून्य है, जो दिखावा से रहित है, जो अल्पाहार करता है, जो इंद्रियों को जीतकर रहता है, जो क्रोध नहीं करता, सदा सत्य बोलता है, जो सभी प्राणियों को अपने आत्मा के समान समझकर सबका हितचिंतक है; वही तीर्थ का उत्तम फल पाता है।"

इस प्रसंग में पुलस्त्य प्रथम तीर्थ पुष्कर का नाम लेते हैं और कहते हैं कि पुष्कर में दस सहस्र कोटि (दस खरब) तीर्थ का निवास है। इससे समझा जा सकता है कि वहां पहुंचने पर सब कुछ लाभ बताया ही जायेगा। फिर जंबूमार्ग, तंदुलिका आश्रम, ययाति पतन, भद्रवट, नर्मदा, चर्मणवती (चंबल), प्रभासतीर्थ, सरस्वती समुद्रतट, वरुण तीर्थ, वरदान तीर्थ, द्वारका, पिंडारक तीर्थ, सिंधु नदी और सागर, दमी, वसुधारा तीर्थ, सिन्धूत्तम तीर्थ, भद्र-तुंगतीर्थ, शक्रकुमार तीर्थ, रेणुका तीर्थ, योनि तीर्थ, विमल तीर्थ, वितस्ता (झेलम) तीर्थ, वड़वा तीर्थ, रुद्रपद तीर्थ, मणिमान तीर्थ, देविका तीर्थ, दीर्घसत्रतीर्थ, विनसन

. **भारत सावित्री, पृष्ठ, ।**

. **वन पर्व , - ।**

तीर्थ, चमसोद् भेद, शिवोद् भेद, नागोद् भेद, शशयान तीर्थ, कुमार कोटि तीर्थ, रुद्रकोटि तीर्थ, सरस्वती संगम तीर्थ तथा अवसान तीर्थ में जाना चाहिए। उपर्युक्त तीर्थों में जाने का फल बहुत–बहुत बताया गया है।

आगे पुलस्त्य कुरुक्षेत्र तीर्थ की बड़ी महिमा बताते हैं। यदि उसकी धूल भी उड़कर अंग पर पड़ जाय तो मनुष्य का उद्धार हो जाय। कुरुक्षेत्र के बाद सतत तीर्थ, पारिप्लवतीर्थ, पृथिवी तीर्थ, शालूकिनी तीर्थ, नागतीर्थ, तुरतंक तीर्थ, पचनंद तीर्थ, वाराह तीर्थ, सोम तीर्थ, एकहंस तीर्थ, कृतशौच तीर्थ, मुंजवट तीर्थ, यक्षिणी तीर्थ, परशुराम कुंड, वंशमूल तीर्थ, लोकोद्धार तीर्थ, श्री तीर्थ, सूर्य तीर्थ, गोभव तीर्थ, शंखिनी तीर्थ, आंतुक तीर्थ, ब्रह्मावर्त तीर्थ, सुतीर्थ, काशीश्वर तीर्थ, मातृतीर्थ, श्री विल्लोमापह तीर्थ, ब्रह्मोदुंबरतीर्थ, केदार तीर्थ, सरक तीर्थ, रुद्रकोटि तीर्थ, इलास्पद तीर्थ, किंजप्य तीर्थ, कलशी तीर्थ, पुंडरीक तीर्थ, त्रिविष्टप तीर्थ, फलकीवन तीर्थ, सर्वदेव तीर्थ, पाणि खात तीर्थ, मिश्रक तीर्थ, देवी तीर्थ, कौशिकी तीर्थ, दृषद्वती तीर्थ, व्यासस्थली तीर्थ, किंदत्त तीर्थ, वेदी तीर्थ, अहन तीर्थ, सुदिन तीर्थ, मृगधूम तीर्थ, वामन तीर्थ, पवनह्रद तीर्थ, आमरह्रद तीर्थ, शालिसूर्य तीर्थ, सरस्वती तीर्थ, नैमिष कुंज तीर्थ, ब्रह्म तीर्थ, सोम तीर्थ, सप्तसारस्वत तीर्थ, औशनस तीर्थ, कपाल मोचन तीर्थ, अग्नि तीर्थ, विश्वामित्र तीर्थ, ब्रह्मयोनि तीर्थ, पृथूदक तीर्थ, मधुस्रव तीर्थ, सरस्वती अरुणा संगम तीर्थ, अर्धकील तीर्थ, साहस्रक तीर्थ, रेणुका तीर्थ, विमोचन तीर्थ, पंचवटी तीर्थ, तैजस तीर्थ, स्वर्गद्वार तीर्थ, अनरक तीर्थ, स्वस्तिपुर तीर्थ, पावन तीर्थ, गंगह्रद तीर्थ, स्थाणुवट तीर्थ, एकरात्र तीर्थ, त्रैलोक विख्यात तीर्थ, सोमतीर्थ, पावन तीर्थ, कन्याश्रम तीर्थ, संनिहती तीर्थ, कोटि तीर्थ में जाकर स्नान–दान आदि करना चाहिए। भूमंडल में रहने वालों के लिए नैमिष तीर्थ है, अंतरिक्ष–निवासियों के लिए पुष्कर तीर्थ है और तीनों लोकों के निवासियों के लिए कुरुक्षेत्र महान तीर्थ है। कुरुक्षेत्र के वायु द्वारा उड़ायी हुई धूल भी अंग पर पड़ जाय तो सब पाप नष्ट हो जाता है।

. **सप्तसारस्वत तीर्थ में महर्षि मंकणक की हथेली में कुशघास गड़ गयी थी, इसलिए घाव हो गया, तो उसमें से शाक का रस जैसा चूने लगा, तो वे भावविभोर होकर नाचने लगे, उनके नाचने से पूरी दुनिया नाचने लगी। इसलिए शिव जी आये, और उन्होंने नाचने से रोका और कहा कि हाथ से शाक का रस चूने से क्या सिद्धि का अहंकार करते हो? मेरे पैर के अंगूठे की तरफ देखो। तो शिव जी ने अपने पैर का अंगूठा ठोका तो उनके अंगूठे से सफेद भस्म (राख) गिरने लगा। यह देखकर मंकणक का अहंकार दूर हो गया। एक जादूगर को दूसरे बड़े जादूगर ने मात दे दिया।**

"मैं कुरुक्षेत्र जाऊंगा, और कुरुक्षेत्र में वास करूंगा, ऐसी बात एक बार मुख से कह देने पर भी मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। कुरुक्षेत्र ब्रह्मा जी की वेदी है। इस पवित्र क्षेत्र का महर्षिगण सेवन करते हैं। जो मनुष्य इसमें निवास करता है, वह कभी भी शोक में नहीं पड़ता। तरंतुक और अरंतुक तथा रामह्रद और मचक्रुक के बीच की भूमि कुरुक्षेत्र एवं समंत पंचक है। यह ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी कहलाती है।"

इसके बाद धर्मतीर्थ की यात्रा करे, फिर सौगन्धिवन, ईशानाध्युषित तीर्थ, सुगंधा, शतकुंभा तथा पंचयज्ञा तीर्थ, फिर त्रिशूलरवात, शाकंभरी तीर्थ, सुवर्ण तीर्थ, धूमावती तीर्थ, गंगाद्वार (हरद्वार), कुब्जाम्रक तीर्थ, सामुद्रक तीर्थ, ब्रह्मावर्त तीर्थ, दर्वीसंक्रमण, सिंधु का उद्‌गम, वेदी तीर्थ, ऋषिकुल्या तीर्थ, वासिष्ठ तीर्थ, भृगुतुंग तीर्थ, वीरप्रमोक्ष तीर्थ, कृतिका तीर्थ, मघा तीर्थ, विद्या तीर्थ, महाश्रम तीर्थ, महालय तीर्थ, वेतसिका तीर्थ, सुंदरिका तीर्थ, ब्राह्मणी तीर्थ, नैमिषारण्य तीर्थ, गंगोद्‌भेद तीर्थ, बाहुदरा तीर्थ, क्षीरवती तीर्थ, विमलाशोक तीर्थ, सरयू का गोप्रतार तीर्थ, गोमती रामतीर्थ, शतसहस्रक तीर्थ, भर्तृस्थान तीर्थ, कोटि तीर्थ, वाराणसी तीर्थ, गोमती-गंगा-संगम तीर्थ, महानदी तीर्थ, धेनु तीर्थ, गृध्रवट तीर्थ, उदयगिरिपुर तीर्थ, योनिद्वार तीर्थ, गया तीर्थ, फल्गुनी तीर्थ, ब्रह्मस्थान तीर्थ, राजगृह, यक्षिणी देवी, मणि-नाग तीर्थ, अहिल्याकुंड, त्रिभुवन विख्यात कूप, जनककूप, विशल्या नदी, वंगदेशीय तपोवन, कंपना नदी, माहेश्वरी धारा, देवपुष्करणी, तीर्थकोटि, नारायण, जातिस्मर तीर्थ, वामन तीर्थ, कौशकी (कोसी) नदी, चंपकारण्य (चंपारन), कन्यासंवेद, निश्चीरा नदी, देवकोट तीर्थ, अग्निधारा तीर्थ, पितामह सरोवर, गौरी शिखर, स्तनकुंड, ताम्रारूण तीर्थ, कौशिकी-अरुणा संगम, कालिका संगम, उर्वशी तीर्थ, सोमाश्रम तीर्थ, कुंभकर्णाश्रम तीर्थ, कोकामुख तीर्थ, प्रांनदी तीर्थ, ऋषभद्वीप, कौंचनिसूदन तीर्थ, औद्दालक तीर्थ, धर्म तीर्थ, संवेद्य तीर्थ, लौहित्य तीर्थ, गंगासागर संगम, अयोध्या, बदरिका तीर्थ, भागीरथी तीर्थ, कन्या तीर्थ (कन्याकुमारी), गोकर्ण

. **कुरुक्षेत्रे गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्।**
अप्येकां वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते
ब्रह्मवेदी कुरुक्षेत्रं पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम्।
तस्मिन् वसन्ति ये मर्त्या न ते शोच्याः कथंचन
तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च।
एतत् कुरुक्षेत्रसमंतपंचकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते
(वन पर्व, अध्याय , श्लोक -)

तीर्थ, गोदावरी–वेणासंगम, वरदासंगम, कुशप्लवन तीर्थ, जाति स्मरह्रद, पयोष्णीतीर्थ, दंडकारण्य तीर्थ, शूर्पारक तीर्थ, सप्तगोदावरी तीर्थ, तुंगकारण्य तीर्थ, मेधाविक तीर्थ, देवह्रद तीर्थ, चित्रकूट मंदाकिनी तीर्थ, भातृस्थान तीर्थ, ज्येष्ठस्थान तीर्थ, श्रृंगवेरपुर, मंजवट तीर्थ, गंगा–यमुना संगम प्रयाग तीर्थ, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) तीर्थ, प्रयाग में साठ करोड़ दस हजार तीर्थ निवास करते हैं। दशाश्वमेधिक तीर्थ, कनखल, इन सब तीर्थों में स्नान करना चाहिए। गंगा का महत्त्व सर्वाधिक है। इन एक–एक तीर्थ के सेवन से सभी पापों का क्षय, स्वर्ग एवं मोक्षप्राप्ति, सात पीढ़ियों का उद्धार आदि बड़ी–बड़ी महिमाएं बतायी गयी हैं। पुलस्त्य ने कहा–भीष्म! मैंने गम्य–अगम्य सभी तीर्थों का वर्णन किया है। इसके बाद पुलस्त्यमुनि वहीं अंतर्धान हो गये। इसके बाद नारद भी युधिष्ठिर से यह पुलस्त्य द्वारा भीष्म से कहा हुआ प्रसंग सुनाकर वहीं अंतर्धान हो गये (अध्याय –)।

मीमांसा

तीर्थ वर्णन के आरंभ में पुलस्त्य ने जो मन–इंद्रियों पर संयम, अपरिग्रह, संतोष, समता, सत्य आदि की बातें कही हैं, वे ही सार हैं। वैदिक युग में इन तीर्थों का उदय नहीं हुआ था। ब्राह्मण लोग भारत के अन्य क्षेत्रों में यात्रा करने लगे और फैलते गये। उन्होंने नदियों पर, नदियों के संगमों पर, वन तथा पर्वतों के पास तीर्थों की स्थापना की। इनके आधार में लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने लगे जिससे धर्म, विद्या, व्यवसाय आदि का प्रचार सुलभ हुआ, बृहत्तर भारत का ज्ञान बढ़ा, परदेश का भय मिटा, लोगों में प्रेम–व्यवहार बढ़ा, परस्पर, आदान–प्रदान बढ़ा। पंडितों ने लोगों में देश–भ्रमण के लिए तीर्थों के माध्यम से उत्साह बढ़ाया। उसके लिए जनता को ऐसा झूठा प्रलोभन दिया जो उत्तम आचरण के लिए खतरनाक हो गया। जब किसी तीर्थ कहे जाने वाले स्थान का नाम लेते ही या वहां जाकर स्थान एवं निवास करते ही सारे पाप कटने का विश्वास दिया जायेगा, तो मनुष्य आचरण सुधार क्यों करेगा, क्योंकि उसमें त्याग और सहनशीलता का तप करना पड़ता है।

लोग तीर्थ कहे जाने वाले स्थानों का भ्रमण करें, जहां आत्मज्ञान मिले उससे लाभ लें, अपने देश में सभी वर्ग और संप्रदाय के लोगों से प्रेम बढ़ावें। याद रखें, तीर्थ कहे जाने वाले स्नान किसी का न कोई पाप काट पायेंगे और न मोक्ष दे पायेंगे। पापकर्म त्यागने से पाप कटेगा और मन, वाणी तथा कर्म पवित्र कर वासना त्यागने से मोक्ष मिलेगा।

. धौम्य का तीर्थ-वर्णन

युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित धौम्य से पूछा–महाराज! मैंने अर्जुन को शस्त्र-विद्या की प्राप्ति के लिए बाहर भेज दिया है। तब से उनके बिना मुझे बेचैनी है। यहां काम्यकवन में मन नहीं लगता है। यही दशा साथियों की भी है। अतएव किसी दूसरे रमणीक वन का पता बतायें जहां अन्न, फल, मूल भी प्रचुर मात्रा में मिल सकें। धौम्य ने कहा–यहां पूर्व दिशा में नैमिष (नैमिषारण्य) तीर्थ है। वहां गोमती नदी बहती है। उससे पूर्व गय (गया) तीर्थ है जो राजा गय के द्वारा सम्मानित हुआ है। वहां महानदी है और गयशीर्ष तीर्थ है। वहां अक्षयवट भी है। वहां फल्गु नदी है। पूर्व ही कौशिकी (कोसी) नदी है जिसके तट पर तप करके विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। पूर्व दिशा में पुण्य नदी गंगा बहती है। ऋषि लोग पांचाल देश में उत्पलावन बताते हैं जहां विश्वामित्र ने अपने पुत्र के साथ यज्ञ किया था। कान्यकुब्ज देश भी विश्वामित्र से प्रभावित क्षेत्र है। गंगा-यमुना का संगम प्रयाग क्षेत्र भी जगत-विख्यात है जो यहां से पूर्व है। ब्रह्मा जी के श्रेष्ठ याग से ही प्रयाग नाम पड़ा था। पूर्व तरफ ही महर्षि अगस्त्य का बड़ा आश्रम है। कालंजर पर्वत पर हिरण्यविंदु तीर्थ है। आगस्त्य पर्वत बहुत रमणीक है। भागीरथी गंगा-सरोवर है। मतंग ऋषि का आश्रम केदार तीर्थ नाम से विख्यात है। कुंडोद नामक पर्वत भी फल-मूल से संपन्न और रमणीक है। देव वन पुण्य क्षेत्र है, जहां बाहुदा और नंदा नदी बहती हैं। यह सब यहां से पूर्व दिशा में है।

अब दक्षिण दिशा के तीर्थों को बताता हूं–रमणीय वन से संपन्न गोदावरी नदी है। वेणा और भीमरथी, ये दो नदियां भी दक्षिण की हैं। राजा नृग से जुड़ी हुई पयोष्णी भी उधर ही है। वहां वाराह तीर्थ भी है। दक्षिण में ही माठर वन है। शूर्पारक क्षेत्र में जमदग्नि की वेदी है। पाषाण तीर्थ और पुनश्चंद्रा तीर्थ वही हैं। अशोक तीर्थ, अगस्त्य तीर्थ, वारुण तीर्थ, कन्याकुमारी तीर्थ, ताम्रपर्णी नदी, गोकर्ण तीर्थ है। उधर ही पर्वत पर अगस्त्य आश्रम है। सौराष्ट्र में चमसोद् भेद तीर्थ है। प्रभास क्षेत्र उधर ही है। पिंडारक तीर्थ, उज्जयंत पर्वत रमणीक है। द्वारकापुरी उधर ही है।

पश्चिम के तीर्थ इस प्रकार हैं–नर्मदा नदी पश्चिम की तरफ ही बहकर समुद्र में मिलती है। मैनाक पर्वत, जंबूमार्ग पश्चिम ही है। गंगाद्वार (हरद्वार) पुष्कर, कुरुक्षेत्र पश्चिम ही हैं।

उत्तर यमुना है, सरस्वती नदी है। लक्षावतरण तीर्थ, शरभंग आश्रम, द्वषद्वती नदी, न्यग्रोध, पुण्य, पांचाल्य, दाल्भ्यघोष और दाल्भ्य सब उत्तर हैं।

नर–नारायण उत्तर ही हैं। हरद्वार, कनखल, बदरिका आश्रम, गंगा का उद्‌गम ये सब उत्तर ही हैं।

धौम्य ऋषि यह सब कह ही रहे थे, इतने में महान ऋषि लोमश आ गये। लोग उनकी पूजा–सत्कार किये। युधिष्ठिर ने उनके आने का कारण पूछा। लोमश ने कहा–मैं यों ही सर्वत्र घूमता रहता हूं। एक दिन स्वर्ग में गया और इंद्रभवन में पहुंच गया। वहां मैंने देखा कि इंद्र के आधे सिंहासन पर अर्जुन बैठे हैं। अर्जुन ने शंकर से पाशुपत अस्त्र प्राप्त कर लिया है। अर्जुन ने यम, कुबेर, वरुण और इंद्र से दिव्य अस्त्र–शस्त्रों का अध्ययन किया है और विश्वावसु के पुत्र से नृत्य, गीत, वाद्य की शिक्षा प्राप्त कर ली है। यह सब सुनकर युधिष्ठिर तथा अन्य भाई बहुत प्रसन्न हुए। लोमश ने कहा कि स्वर्ग से चलते समय अर्जुन ने मुझसे कहा कि आप मेरे भाइयों के पास जाकर उनको तीर्थों के दर्शन कराइए। अतएव मैं अर्जुन के आग्रह से आपको तीर्थ–यात्रा में सहयोग करूंगा। मैं दो बार सब तीर्थों के दर्शन कर चुका हूं। अब तीसरी बार आपकी रक्षा करते हुए तीर्थ भ्रमण करूंगा। युधिष्ठिर ने कहा–महर्षि धौम्य की आज्ञा से हम लोग पहले से ही तीर्थ–यात्रा के लिए उत्सुक हो गये हैं। अब आपका बल पाकर अधिक उत्साह बढ़ गया है।

लोमश जी ने युधिष्ठिर से आगे बड़े काम की बात कही जो यात्रा के लिए अत्यंत आवश्यक है। यात्रा के लिए जो तत्पर थे, उन पांडु–पुत्र युधिष्ठिर से लोमश ने कहा–"महाराज! हलके हो जाइए। हलके होकर यात्रा में स्वतंत्रता रहेगी।" इसके बाद युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर से आये हुए नागरिक, ब्राह्मण तथा साधु–संन्यासियों से कहा–जो भिक्षाभोजी ब्राह्मण और संन्यासी हैं और जो भूख, प्यास, परिश्रम, ठंडी–गरमी नहीं सह सकते, वे लौट जायं। जो पकवान, मिष्ठान्न, चटनी, शराब, मांस आदि के आदती हैं, वे सब लौट जायं। जो चाहते हैं कि हमें बना–बनाया भोजन मिल जाय, स्वयं न बनाना पड़े, वे भी लौट जायं। जो हस्तिनापुर से चले आये हैं, वे राजा धृतराष्ट्र के पास लौट जायं। राजा उनकी जीविका का प्रबंध कर देंगे। यदि वे न करें, तो पांचाल–नरेश के यहां चले जायं, तो वे निश्चित कर देंगे।

उक्त बात सुनकर हस्तिनापुर के नागरिक, ब्राह्मण, यति भारी मन से हस्तिनापुर लौट गये। राजा धृतराष्ट्र ने उनकी आजीविका का प्रबंध भी करवा दिया। इधर युधिष्ठिर थोड़े लोगों को लेकर काम्यक वन में तीन दिन तक रुके रहे (अध्याय –)।

. **लघुर्भव महाराज लघुः स्वैरं गमिष्यसि वन०, ,**

मीमांसा

वन में बैठे-ठाले दिन कटना कठिन था, तो लेखक का कर्तव्य है कि वह पांडवों को तीर्थ-यात्रा के बहाने कुछ लेखन-सामग्री बनाये। कृष्णभक्तों को अर्जुन की महिमा बढ़ानी ही थी, तो उन्हें उस स्वर्ग तथा इंद्र के आधे आसन का अधिकारी बना दिया जो कहीं नहीं हैं। लोमश सब जगह आते-जाते हैं, स्वर्ग में भी। वे सब समय जिंदा रहने वाले और सर्वगत जो ठहरे, जो कोई और कहीं नहीं होता, वह पौराणिक गल्प में संभव हो जाता है।

. युधिष्ठिर की तीर्थ-यात्रा, अगस्त्य और परशुराम के उपाख्यान

काम्यक वन के ब्राह्मण जब जान पाये कि युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा में निकलने वाले हैं, तब वे आकर उनसे आग्रह करने लगे कि आप कृपया हम लोगों को भी साथ ले चलें। तीर्थ-यात्रा सरल नहीं है। वहां तथा रास्ते में बहुत से हिंसक जंतु हैं। हम लोग आपकी छत्रछाया में रहकर तीर्थ का लाभ पा जाते तो हमारा बड़ा भाग्य होता। युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की बात मान ली; क्योंकि वे यात्रा के पात्र थे।

यात्रा की तैयारी होने लगी। इतने में व्यास, नारद, पर्वत आदि ऋषि आ गये। उन्होंने इन तीर्थयात्रियों से कहा—तुम लोग शुद्ध चित्त से तीर्थ-यात्रा करो। शरीर-शुद्धि 'मानुषव्रत' है। और बुद्धि-शुद्धि 'दैवव्रत' है। राग-द्वेष से पूर्ण मुक्त मन संपूर्ण शुद्धि है। सब प्राणियों के लिए मैत्री-बुद्धि रखकर तीर्थ-यात्रा करो। मार्गशीर्ष (अगहन) पूर्णिमा व्यतीत होने पर पुष्यनक्षत्र (पौष मास) में युधिष्ठिर की तीर्थ-यात्रा शुरू हुई। यात्रियों के फटे-पुराने वस्त्र तथा मृगचर्म थे। चारों पांडव, द्रौपदी, धौम्य, लोमश, ब्राह्मण समाज, इंद्रसेन आदि चौदह से अधिक सेवक, इसके बाद रसोइए, रथ आदि साथ चले। पांडव आवश्यक अस्त्र-शस्त्र लिए, कमर में तलवार, पीठ पर तरकश और हाथों में धन्वा-बाण लेकर पूर्व दिशा को चल पड़े।

चलते-चलते युधिष्ठिर लोमश से कहते हैं-"हे महान देवर्षि! मैं अपने को सद्‌गुण-हीन नहीं मानता हूं, तो भी मैं दुखों से इतना संतप्त हूं जितना अन्य राजा नहीं होते।" दुर्योधन सदगुण-रहित और धर्म-विमुख हैं, किंतु वे उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होते जा रहे हैं। इसका क्या कारण है?

. **न वै निगुणमात्मानं मन्ये देवर्षिसत्तम्।**
तथास्मि दुःखसंतप्तो यथा नान्यो महीपतिः वन. ,

लोमश ने कहा–अत्याचारी का धन बढ़ते दिखता है, परंतु कुछ दिनों के बाद वह समूल नष्ट होता है। युधिष्ठिर नैमिषारण्य तीर्थ में गये। वहां से गया तीर्थ गये। गया से अगस्त्य आश्रम मणिमती नगरी में पड़ाव डाला। युधिष्ठिर ने लोमश से पूछा कि महर्षि अगस्त्य ने यहां पर वातापि को क्यों नष्ट किया था? लोमश ने बताया कि वह ब्राह्मण-द्रोही था। वह ब्राह्मणों को धोखा देकर मार देता था, इसलिए अगस्त्य ने मार दिया।

एक बार अगस्त्य यात्रा में थे, तो उन्होंने देखा कि मेरे पितर उलटे मुख गड्ढे में लटके हैं। उन्होंने उनसे इसका कारण पूछा। पितरों ने बताया कि हम तुम्हारे पितर हैं, संतान की इच्छा करके हम गड्ढे में लटके हैं। अगस्त्य को अपने पितरों पर दया आयी और उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत त्यागकर संतान उत्पन्न करने का संकल्प लिया। अगस्त्य ने विदर्भ-नरेश से उनकी युवती पुत्री 'लोपामुद्रा' को अपनी पत्नी बनाने के लिए मांगा। विदर्भ-नरेश हक्के-बक्के रह गये। हां-नाहीं दोनों करना कठिन। कोमल राजकुमारी को दाढ़ी वाले कठोर वनवासी अगस्त्य को उनकी पत्नी बनाने के लिए देना समझ में नहीं आया, और ऐसे जोरदार ऋषि को नाहीं करना भी खतरे से खाली नहीं। राजा अचेत-जैसे हो गये। लोपामुद्रा ने साहस किया और पिता से कहा–आप स्वीकार लें। मैं इस वनवासी को सह लूंगी। फलतः अगस्त्य ने लोपामुद्रा का पाणिग्रहण किया। जब लोपामुद्रा राजशाही आभूषणों एवं वस्त्रों से सज कर अगस्त्य के पास आयी, तो अगस्त्य ने कहा–तुम इन आभूषणों और वस्त्रों को उतार दो और वनवासी वाले फटे-पुराने वस्त्र, वल्कल एवं मृगचर्म धारण करो। लोपामुद्रा ने वैसा ही किया, और दोनों गंगाद्वार (हरद्वार) तपस्या करने चले गये।

तपस्या करते जब कुछ काल व्यतीत हो गया, तब अगस्त्य लोपामुद्रा को गर्भवती करना चाहे। लोपामुद्रा ने तपस्या में तो अगस्त्य का साथ दिया, परंतु जब रजोगुणी बात आयी–भोग और प्रजनन, तब उसका भी ठकुराना संस्कार जग गया। उसने अगस्त्य से कहा–इस फटेचिटे वस्त्र, वल्कल और मृगचर्म में लिपटी तपस्विनी वेष में मैं आपकी समागम-शय्या पर नहीं आ सकती। यदि समागम की इच्छा है तो राजशाही शय्या और शृंगार चाहिए। अगस्त्य ने कहा–तुम्हारे पिता के समान न मेरे पास कुछ है न तुम्हारे पास। तब यह कैसे होगा? लोपामुद्रा ने कहा–यह तो सच है, परंतु इस तपस्विनी वेष में भोग संभव नहीं है।

अगस्त्य ने कहा–अच्छा, तुम यहां तपस्या में रहो, मैं धन पाने के लिए जाता हूं। अगस्त्य श्रुतर्वा नाम के राजा के पास गये। राजा ने अगवानी की, आदर-सत्कार किया। जब अगस्त्य ने राजा से धन की बात कही तो उसने सालतमामी आमदनी-खर्च का लेखा-जोखा उनके सामने रख दिया; तो अगस्त्य ने पाया कि वर्ष भर का आय-व्यय बराबर है। अतएव ऋषि ने कहा कि इसमें थोड़ा भी धन लेना तो किसी प्राणी को कष्ट देना है। तब अगस्त्य श्रुतर्वा राजा को साथ लेकर ब्रघ्नश्व नाम के राजा के पास गये, तो वहां भी वर्ष भर का आय-व्यय बराबर पाया। तब उन राजा को भी साथ लेकर त्रसदस्यु राजा के पास गये, परंतु वहां भी सालतमामी हिसाब में जमा-खर्च बराबर पाया। अतएव अगस्त्य ने इन तीनों राजाओं से धन लेना अनुचित समझा।

अंततः तीनों राजाओं ने एक-दूसरे को देखकर अगस्त्य से कहा–दैत्यराज इल्वल इस पृथ्वी पर सबसे धनी राजा है; अतएव उसके पास चलकर धन मांगें। ये चारों इल्वल के पास पहुंचे। उसने इन सबका आदर-सत्कार किया। इल्वल की यह आदत थी कि जिनको वह अपना विरोधी मानता था, उनका स्वागत कर अपने भाई वातापि को भेड़ा बनाकर उसे काट देता था और उसका मांस पकाकर आगंतुक को खिला देता था। उसके बाद वह पुकारता–वातापे! तो वातापि भोजन किये हुए आगंतुक का पेट फाड़कर निकल आता था और आगंतुक मर जाता था। यही बात इन लोगों के साथ भी इल्वल करना चाहा और अपने भाई वातापि को भेड़ा बनाकर उसे काट दिया और उसका मांस पकाकर अगस्त्य को परोसा गया। वातापि का पूरा मांस अगस्त्य खा गये। इसके बाद इल्वल ने पुकारा–वातापे! तो अगस्त्य के गुदा से मेघ के समान गर्जते हुए जोर की आवाज के साथ उनका अपान वायु निकला। इल्वल बारंबार कहता–वातापे निकलो, निकलो। अगस्त्य ने हंसकर कहा–वातापि तो पच गया। अब वह निकलने वाला नहीं है। इल्वल को भाई की मृत्यु पर दुख हुआ।

इल्वल ने अगस्त्य से उनके पधारने का कारण पूछा, तो अगस्त्य ने धन की इच्छा से अपना आना बताया। फिर दैत्यराज इल्वल ने सोने के रथ में काफी धन लादकर अगस्त्य को दिया। अगस्त्य ने धन लाकर लोपामुद्रा की इच्छा पूरी की। अगस्त्य लोपामुद्रा को गर्भवती कर तपस्या में लग गये। लोपामुद्रा का गर्भ सात वर्ष तक पेट में पलता और बढ़ता रहा– *गर्भो ववृधे सप्त शारदान्* (वन. ,)। उसके बाद बच्चा पैदा हुआ जिसका नाम दृढस्यु रखा गया। वह विद्वान हुआ और थोड़ी उम्र से ही इंधन का भार इध्म (समिधा) सिर पर लाने

लगा, इसलिए उसका दूसरा नाम इध्मवाह पड़ गया। अगस्त्य के पितर उत्तम गति पाये। इसके बाद यह आश्रम अगस्ताश्रम कहलाता है।

लोमश ने युधिष्ठिर से कहा–यह आगे भृगुतीर्थ है। इसमें स्नान कर परशुराम अपने खोये हुए तेज को तुरंत पा गये थे। अतएव तुम भी इसमें स्नान कर दुर्योधन द्वारा छीने गये अपने तेज को पुनः प्राप्त कर सकते हो। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और द्रौपदी सहित स्नान किया, फिर तो वे महावीर हो गये।

युधिष्ठिर ने लोमश से परशुराम के तेजहीन होने का कारण पूछा, तो लोमश ने बताया कि जब विष्णु ने अयोध्या में श्रीराम के रूप में अवतार लिया, तो उन्हें देखने के लिए परशुराम आये। परशुराम ने श्रीराम से कहा कि मेरे इस क्षत्रिय-संहारक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दो। श्रीराम ने प्रत्यंचा चढ़ाया और परशुराम का दिया हुआ बाण भी चढ़ाकर छोड़ दिया, तो पूरी दुनिया ही कांप गयी। इससे परशुराम जी का तेज क्षीण हो गया था (अध्याय –)।

मीमांसा

पुत्र के साधु-संन्यासी होने से पितर नरक में पड़ते हैं, ऐसी झूठी कथाओं को पढ़-सुन कर कितने विवेकहीन साधु-संन्यासी ब्रह्मचर्य और त्याग का रास्ता छोड़कर गृहस्थ हो जाते हैं। अगस्त्य के साथ ऐसी कहानी कथाकारों ने जोड़ी। अगस्त्य का गृहस्थ ऋषि रहना बुरा नहीं है, परंतु उनके त्यागी होने से पितर गड्ढे में लटके थे, यह कर्मकांडी पंडितों की झूठी कथा है। सबका कल्याण अपने पवित्र कर्म से है, पुत्र पैदा करने से नहीं।

इल्वल अपने भाई वातापि को भेड़ा बनाकर, उसे काटकर, उसका मांस पकाकर विरोधी को खिला देता था और उसके बाद उसके पुकारने पर वातापि अतिथि का पेट फाड़कर निकल आता था और अतिथि मर जाता था, यह कोई बात हुई? क्या ऐसा संभव है? यह मिथ्या कथा है। अगस्त्य के अपान वायु खुलने से बादल गर्जने के समान आवाज हुई। लेखक अगस्त्य के अपान वायु में भी अतिशयोक्ति अलंकार लाता है। अगस्त्य का वातापि को पचा लेने का मतलब है उसको समझा-बुझाकर रास्ते पर लाना।

लोपामुद्रा का गर्भ सात वर्षों तक पलता और बढ़ता रहा, यह भी प्रकृति-विरुद्ध मिथ्या कथा है। कारण-कार्य-व्यवस्था के विरुद्ध बात लिखने में पंडितों को क्या रस मिलता था? इससे अज्ञान की वृद्धि के अलावा कुछ नहीं है।

तीर्थ की महिमा बढ़ानी है, तो परशुराम को तेजहीन बनाकर, फिर उनको उस तीर्थ में नहलाकर तेजवान बना देना पौराणिक पंडितों की मेहरबानी है।

युधिष्ठिर उक्त तीर्थ में नहाकर महावीर हो गये। तीर्थ के पानी में नहाने से लोग पाप-मुक्त और महावीर होते तो सारी दुनिया यह पुण्य प्राप्त कर लेती।

. महर्षि अगस्त्य का महत्त्व

कालकेय नाम के दैत्यों का एक बड़ा दल था। वह वृत्रासुर की अध्यक्षता में देवताओं को रगड़ने लगा। देवता घबराकर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा कि दैत्यों पर विजय करना मेरे वश की बात नहीं है। तुम लोग महर्षि दधीच की शरण में जाओ। वे अपने शरीर की हड्डी दे दें और उससे **वज्र** बना लो, तो उस वज्र से वृत्रासुर मारा जा सकता है। सब देवता दधीच के पास गये। दधीच ने स्वीकार लिया। उन्होंने अपनी देह छोड़ दी। देवता लोग उनकी हड्डी से वज्र बनाये और उससे वृत्रासुर को मारने के लिए इंद्र चले। इंद्र और वृत्रासुर का घोर युद्ध हुआ। इंद्र की तो दुर्दशा हो गयी। वे विमूढ़ और मूर्च्छित हो गये। फिर विष्णु के सहयोग से इंद्र ने वृत्रासुर को मार गिराया। किंतु इंद्र स्वयं भयभीत होकर तालाब के जल में प्रवेश कर गये। उन्हें विश्वास नहीं होता था कि वृत्रासुर मारा गया है।

वृत्रासुर के मारे जाने पर सब दैत्य संगठित होकर देवताओं के विध्वंस के लिए उतारू हो गये। दैत्य समुद्र में छिपकर रहते थे और रात में निकलकर देवताओं को मारते थे। दैत्य लोग विद्वानों और तपस्वियों को बीन-बीन कर मारते थे। वसिष्ठ के आश्रम के एक सौ अट्ठासी ब्राह्मणों तथा नौ दूसरे तपस्वियों को दैत्यों ने मारकर खा लिया। च्यवन मुनि के आश्रम के सौ मुनियों को खा लिया। दैत्य रात में ब्राह्मणों को मारते और दिन में समुद्र के भीतर छिपे रहते थे।

दैत्यों से पीड़ित होकर देवता विष्णु भगवान की शरण में गये। विष्णु भगवान भी अपनी मजबूरी बताये। वे भी बेचारे दैत्यों पर विजय करने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने देवताओं से कहा—जब समुद्र का जल सूख जाय तब उसमें छिपे दैत्य दिख सकते हैं और तभी वे मारे जा सकते हैं। समुद्र का जल सोखना मामूली काम नहीं है। यह काम अगस्त्य कर सकते हैं। वे समुद्र के जल को पूरा पी सकते हैं। अतएव सब उनकी शरण में जाओ। देवता उनकी शरण में गये। अगस्त्य ने देवताओं का निवेदन स्वीकार लिया और उन्होंने समुद्र का पूरा जल पी लिया। फलतः समुद्र सूख गया। कालकेय दैत्य मारे गये। परंतु उनमें से कुछ धरती के भीतर घुसकर छिप गये जिन्हें मारा जाना असंभव हो गया।

अगस्त्य ने समुद्र का पूरा जल पी लिया। केवल इतनी ही महिमा उनकी नहीं है। उनकी और भी महिमा सुनिए। वस्तुतः अगस्त्य का पहला आश्रम प्रयागराज (इलाहाबाद) के यमुना तट पर पास में दक्षिण ही था। एक बार विंध्य पर्वत को अहंकार जगा और उसने सूरज से कहा कि तुम सुमेरुगिरि पर्वत की नित्य परिक्रमा करते हो, मेरी परिक्रमा क्यों नहीं करते हो? सूरज ने कहा कि मैं क्या करता हूं, विधाता के नियम से मैं सुमेरुगिरि की परिक्रमा करता हूं। आपकी मैं परिक्रमा नहीं कर सकता। इतना सुनना था कि विंध्य पर्वत क्रोध से आग बबूला हो गया और वह बढ़ने लगा कि सूरज का आना–जाना ही रुक जाय। विंध्य पर्वत के इस प्रकार बढ़ने से सूरज न ऊपर जा सकता था और न पृथ्वी पर प्रकाश कर सकता था। फिर देवता घबराये और अगस्त्य ऋषि के पास गये। अगस्त्य ने कहा–अच्छा, मैं देखता हूं। महर्षि अगस्त्य प्रयागराज के अपने मूल आश्रम से चलकर विंध्य पर्वत के पास गये और उन्होंने उससे कहा कि मैं दक्षिण दिशा को कुछ काम से जा रहा हूं, तुम मुझे रास्ता दो और जब तक मैं लौट न आऊं तब तक ऐसे ही पेट के बल धरती में चिपके पड़े रहो।

विंध्य पर्वत की ऐसे करारे ऋषि के सामने सिट्टीपिट्टी गुम हो गयी। वह चुपचाप जमीन में चिपक गया। अगस्त्य ऋषि दक्षिण गये, तो आज (ईसा की इक्कीसवीं शताब्दी) तक वे लौटे ही नहीं। अतएव उनके डर के मारे विंध्य पर्वत आज भी वैसे पड़ा है (अध्याय –)।

मीमांसा

कश्यप की जेठी पत्नी दिति से जो बच्चे पैदा हुए वे दैत्य कहलाये और दूसरी पत्नी अदिति से जो बच्चे पैदा हुए वे देव कहलाये। भाई-भाई का झगड़ा हो ही जाता है। उसको कवियों ने तूल दे दिया है।

वृत्र आकाश में बादल और पर्वत पर बर्फ है। इसे वायु और सूर्य की गरमी क्षीण करते हैं। यही वेद के अनुसार वृत्र–असुर का नाश है। इसको पुराण वालों ने भयंकर बना दिया है। दधीच का हड्डी देने का अर्थ इतना ही है कि उन्होंने अपने को समाज सेवा में समर्पित कर दिया।

अगस्त्य का प्रथम आश्रम प्रयाग के पास यमुना तट पर था। वे धर्म–प्रचार की दृष्टि से दक्षिणी भारत जाना चाहे। तब तक ब्राह्मण लोग गंगा–यमुना के दक्षिण नहीं जाते थे। उन्हें उधर जाना दुरूह लगता था। अगस्त्य पहले साहसी हैं जो विंध्य पर्वत को पार कर दक्षिण भारत गये। यही विंध्य पर्वत को परास्त करना है। अगस्त्य ने दक्षिण भारत में धर्म का प्रचार किया। इसके बाद वे समुद्र

पार कर सिंहल, जावा, सुमात्रा आदि देशों में धर्म प्रचार किये। वे भारत के संभवतः पहले धर्मप्रचारक थे जो समुद्र पार गये, इसलिए उनके नाम 'समुद्र चुलुक' अर्थात समुद्र को अंजली में लेकर पी लेने वाला तथा 'पीताब्धि' समुद्र को पी लेने वाला कहा गया। पुराणों में इन शब्दों का अर्थ लाक्षणिक न रहकर अगस्त्य द्वारा समुद्र का जल पी लेने वाला मान लिया गया। जावा द्वीप में सन् ई का खुदा हुआ लेख मिला है जिसमें अगस्त्य ऋषि का दक्षिणी भारत में 'कुंजर-कुंज' नाम का आश्रम बताया जाता है। ई. सन् के जावा की भाषा में एक खुदे लेख में बताया गया है कि अगस्त्य के वंशज जावा देश में जाकर बस गये हैं। नवीं शताब्दी में महर्षि अगस्त्य का मत जावा आदि द्वीपों में प्रचारित था। अगस्त्य का धर्म-प्रचार भारत के दक्षिण-पूर्व देशों में अधिक होने से उनका एक नाम 'आग्नेय' पड़ा। अगस्त्य के इस अपार साहस के कारण उनके नाम से एक तारा को व्यक्त किया जाता है-'अगस्त्य तारा।'

न कोई समुद्र पी सकता है, न जड़ पर्वत अहंकार या बात कर सकता है। पुराण लेखकों ने लाक्षणिक बातों को तिल का ताड़ बनाकर बच्चों की कहानी बना दी है।

. राजा सगर का यज्ञ और भगीरथ के तप से गंगावतरण

अगस्त्य ने समुद्र का पूरा जल पी लिया। अब समुद्र सूख गया। फिर कालकेय दैत्यों को देवताओं ने मार गिराया। सूखे समुद्र को जल से कैसे भरा जाय, इसकी चिंता हुई, तो उसका रास्ता पौराणिकों ने निकाल लिया। उसके विषय में आगे कथा है।

राजा सगर इक्ष्वाकु वंश में प्रसिद्ध थे। उनकी दो पत्नियां थीं। उनसे संतान नहीं हो रही थीं। उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के लिए कैलाश पर्वत पर घोर तपस्या की, शिव जी प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों पत्नियों को पुत्र होने के लिए वर दिया। दोनों पत्नियों के नाम थे वैदर्भी और शैव्या। समय आने पर वैदर्भी ने एक तूंबी पैदा की और शैव्या ने असमंजस नाम का एक सुंदर पुत्र पैदा किया। सगर ने उस पैदा हुई तूंबी को फेंक देना चाहा, तो आकाशवाणी हुई कि फेंको मत, अपितु इसे तोड़कर इसमें से एक-एक बीज अलग-अलग घी के गरम घड़े में डालकर रखो। इसमें कुल साठ हजार बच्चे पैदा होंगे। ऐसा ही किया गया। समय आने पर उन घड़ों से साठ हजार बच्चे पैदा हुए। वे सब बड़े बलवान थे, आकाश में घूमने वाले भी थे। वे सब अहंकारी हो गये। वे मनुष्यों तथा देवताओं की भी

अवहेलना करने लगे। सगर–पुत्रों से सताये जाने के कारण मनुष्य तथा देवता पीड़ित होकर ब्रह्माजी के पास शिकायत लेकर गये। ब्रह्माजी ने कहा कि तुम लौट जाओ। ये सगर के साठ हजार पुत्र अपने आप नष्ट हो जायेंगे।

कुछ दिनों के बाद राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। अश्व विश्व–विजय के लिए छोड़ा गया। एक दिन सगर के पुत्रों ने पिता से कहा कि अश्वमेध का घोड़ा दिखायी नहीं देता। सगर ने कहा कि तुम लोग पता लगाओ। सगर–पुत्र जब पृथ्वी पर अश्व नहीं पाये तो वे जमीन खोदकर पाताल में गये, तो पूर्वोत्तर तरफ पाताल में अश्व दिखायी दिया। वहां कपिल बैठे थे। सगर–पुत्र कपिल की अवहेलना करके अश्व पकड़ने के लिए दौड़े। कपिल विष्णु भगवान हैं। उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने सगर–पुत्रों पर ऐसी दृष्टि डाली कि वे भस्म हो गये।

यह बात नारद से सुनकर सगर बहुत दुखी हुए। राजा सगर की दूसरी रानी शैव्या से असमंजस नाम का पुत्र पैदा हुआ था। वह दुष्ट था। वह नगरवासियों के बच्चों को सरयू नदी में फेंक दिया करता था। अतएव सगर ने उसको निकाल दिया था। असमंजस का पुत्र अंशुमान था, वह समझदार था। सगर ने उसको अश्व का पता लगाने के लिए भेजा। अंशुमान कपिल के पास जाकर नतमस्तक हुआ। कपिल ने कहा कि अश्व ले जाओ जिससे तुम्हारे पितामह यज्ञ पूरा करें। तुम्हारे साठ हजार चाचा जो मेरे कोप से जल गये हैं, वे समय से स्वर्ग में जायेंगे। सगर का यज्ञ हो गया। वे कुछ दिनों में मर गये। अंशुमान राजा हुए। अंशुमान के दिलीप नाम का पुत्र हुआ, और दिलीप के भगीरथ नाम का पुत्र हुआ।

भगीरथ आगे चलकर चक्रवर्ती नरेश हुए। उन्होंने सुना कि मेरे साठ हजार पूर्वज कपिल के क्रोध से जल मरे हैं; अतएव वे उनके उद्धार के लिए मंत्रियों को राज्य–व्यवस्था सौंपकर हिमालय के शिखर पर तपस्या करने चले गये। तपस्या करते एक हजार दिव्य वर्ष बीत जाने पर गंगा जी ने स्वयं आकर दर्शन दिया। वर मांगने को कहा। भगीरथ ने अपने पितरों को तारने की बात कही। गंगा ने कहा कि मैं जब आकाश से धरती पर गिरूंगी तब मेरा वेग कौन रोक पायेगा? याद रखो, केवल महादेव जी रोक सकते हैं। भगीरथ ने तप द्वारा महादेव को प्रसन्न किया। वे गंगा के वेग को रोकने के लिए राजी हो गये। गंगा आकाश से गिरकर शिव के मस्तक पर आयीं। तब उन्होंने भगीरथ से कहा कि तुम रास्ता बताओ, किधर चलूं। भगीरथ आगे–आगे चले, पीछे–पीछे गंगा चली। गंगा ने कपिल मुनि के घर–आश्रम के पास पहुंचकर सगर–पुत्रों के

भस्म को अपने में समाकर उन्हें स्वर्गवास दे दिया। इस प्रकार सूखा सागर पुनः गंगा जी की कृपा से भर गया (-)।

मीमांसा

पौराणिक गल्प-लेखकों को न विश्व की कारण-कार्य-व्यवस्था से मतलब है, न प्राकृतिक नियमों से और न सृष्टिक्रम से। उनको जैसा मन होता है वैसा लिखते हैं। वे सब कुछ वर और शाप से प्रभावित रखते हैं जिससे लोग धार्मिक कहलाने वालों से डरें और उनके आशीर्वाद से सब कुछ पाने की आशा रखें। जिस तरह पौराणिक गल्पों के वर और शाप हैं, बचकाने हैं। इनके जितने भगवान, ब्राह्मण, महर्षि और महात्मा हैं, प्रायः क्रोध में ही रहते हैं। उनके पास सहनशक्ति है ही नहीं।

भला किसी स्त्री के तूंबा पैदा होकर उससे साठ हजार बच्चे हो सकते हैं? कपिल का कौन-सा भगवत् तत्त्व है कि उनके द्वारा जरा-सा मन के विरुद्ध देखकर साठ हजार मनुष्यों को जला दिया जाय? गंगासागर जहां कपिल का स्थान है वह पाताल में नहीं है कि पृथ्वी खोदकर वहां जाना पड़े। वह जमीन पर ही है। भगीरथ एक हजार दिव्य वर्ष तक तपस्या किये, यह झूठ है। लोग सौ वर्ष के पहले और कुछ लोग पीछे मरते हैं। यह वेदों की भी घोषणा है। गंगा आदि सभी नदियां प्राकृतिक ढंग से बहती हैं और वे निरी जड़ हैं। वे किसी की विनती सुनकर नहीं चलती हैं। समुद्र अपने प्राकृतिक कारण से सदा भरा रहता है। परिवर्तन प्राकृतिक वस्तुओं का स्वभाव है।

. ऋष्य शृंग और अंगदेश के राजा लोमपाद

अंगदेश (आज के भागलपुर क्षेत्र, बिहार) की चंपा नगरी में राजा लोमपाद रहते थे जो अयोध्या-नरेश दशरथ के मित्र थे। लोमपाद ने अपने ब्राह्मण पुरोहित का अपमान कर दिया था, इसलिए इंद्र ने रुष्ट होकर अंगदेश में जल बरसाना बंद कर दिया। अच्छे ब्राह्मणों को बुलाया, तो उन्होंने कहा कि ब्राह्मण-कोप से तुम्हारे देश में पानी नहीं बरसता है। फिर उपाय सुझाया कि विभांडक के पुत्र ऋष्य शृंग यदि यहां लाये जा सकें, तो वर्षा होगी।

विभांडक मुनि वनवासी थे। वे एक दिन गंगा में स्नान कर रहे थे, इतने में उन्होंने उर्वशी अप्सरा को देखा और उनका मन चलायमान हो जाने से उनका वीर्य पानी में गिर गया। उसी समय वहां एक मृगी पानी पी रही थी, वह

पानी के साथ मुनि का निकला वीर्य पी गयी। उसको गर्भ रह गया। उसी से जो बच्चा पैदा हुआ वह ऋष्य शृंग नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसको विभांडक मुनि ने पाला।

राजा लोमपाद ने वेश्याओं को धन-द्रव्य देकर तैयार किया कि वे ऋष्य शृंग को किसी प्रकार तैयार करके यहां लावें। वेश्याएं गयीं। नौका नदी में रोक दीं। उनमें से एक कुशल सुंदरी युवती उस समय विभांडक मुनि के आश्रम पर गयी जब वे फल-मूल लेने के लिए आश्रम से बाहर गये थे। केवल ऋष्य शृंग थे। वेश्या ने ऋष्य शृंग से पूछा–मुने, तपस्वी कुशल से हैं न? आप लोगों को पूर्णतया फल-मूल मिल जाते हैं न? आप इस आश्रम में प्रसन्न तो हैं न? मैं आपके दर्शन के लिए आयी हूं। आपकी तपस्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है न? आपके पिता का बल घट तो नहीं रहा है? आप आनंद से हैं न? आपका स्वाध्याय चल रहा है न?

ऋष्य शृंग ने वेश्या से कहा–ब्रह्मन! आप ज्योतित हैं, मेरे लिए वंदनीय हैं। मैं आपको पाद्य-अर्घ्य फल-मूल अर्पित करता हूं। कुशासन है। इस पर काला मृगचर्म बिछा है। इस पर बैठें। आपका आश्रम कहां है? आपका नाम क्या है? आप देवता के समान हैं। आप किस व्रत का पालन कर रहे हैं?

वेश्या ने कहा–मेरा आश्रम बड़ा सुंदर है। वह इस पर्वत के उस पार तीन योजन पर है। वहां जो मेरा धर्म है उसके अनुसार आपको मेरा प्रणाम नहीं करना चाहिए। मैं आपके दिये हुए पाद-अर्घ्य को छू नहीं सकती। मैं आपके लिए वंदनीय नहीं हूं, अपितु आप ही मेरे लिए वंदनीय हैं। मैं अपने नियम के अनुसार आपका आलिंगन करना चाहती हूं। ऋष्य शृंग ने उसे पके फल दिये, परंतु उसने उसको भी नहीं छुआ। अपितु वेश्या ने ऋष्य शृंग को ही उत्तम खाद्य-पेय आदि खिलाया-पिलाया। वेश्या ने ऋष्य शृंग का स्पर्श किया, आलिंगन किया, उनके इर्दगिर्द दौड़-दौड़ कर गेंद खेला। और अपने अंगों को उन्हें उभाड़-उभाड़ कर दिखाया। इसके बाद चली गयी।

वेश्या के प्रेम में मुनिकुमार अचेत-से हो गये। उनके पिता विभांडक आये तो देखा ऋष्य शृंग की स्थिति अच्छी नहीं है। उन्होंने उस वेश्या को ब्रह्मचारी समझा था। पिता जी से जब उसकी चाल-ढाल बतायी तो वे समझ गये कि यह कोई वेश्या है। उन्होंने कुमार से कहा–बेटा, यह सब राक्षसी स्वभाव वाले हैं। इनसे दूर रहना चाहिए। विभांडक तीन दिन तक वेश्या को खोजते रहे, परंतु उसे नहीं पाये। फिर आश्वस्त होकर वे फल-मूल

लेने आश्रम से बाहर चले गये। इतने में दावं पाकर वेश्या आ गयी और ऋष्य शृंग को नाव में बैठाकर राजा लोमपाद के राजभवन में पहुंचा दिया। राजा लोमपाद ने ऋष्य शृंग को रनिवास में ठहरा दिया। उसी क्षण इंद्र ने भारी वर्षा की। लोमपाद की कामना पूरी हो गयी और उन्होंने अपनी पुत्री शांता का विवाह ऋष्य शृंग से कर दिया।

इधर विभांडक जब फल-मूल लेकर आश्रम पर आये तो देखा कि आश्रम सूना है। बहुत खोजने पर भी उनको उनका पुत्र नहीं मिला। उनको राजा लोमपाद पर शंका हुई। वे क्रोध में चंपानगरी की तरफ चल दिये। अंग देश में चंपानगरी राजधानी थी। राजा लोमपाद ने अपने राज्य में विभांडक के आने के पथ में अपने आदमियों को नियुक्त कर दिया था और उन्हें बता दिया था कि जब विभांडक इधर अपने पुत्र को खोजते हुए आयें, तब उन्हें बताया जाय कि ये दिखते हुए पशु, खेत, बाग सब ऋष्य शृंग के ही हैं। विभांडक अपना सत्कार पाकर शांत हो गये। उन्होंने अपने पुत्र तथा पुत्रवधू शांता को देखा और राजा लोमपाद से पूजित हुए, अतएव प्रसन्न हुए। विभांडक जब आश्रम चलने लगे तब अपने पुत्र ऋष्य शृंग से उन्होंने कहा-बेटा! पुत्र पैदा हो जाने के बाद आश्रम पर आ जाना। अंततः ऋष्य शृंग पत्नी शांता के साथ वन में आश्रम में अपने पिता के पास आ गये (अध्याय -)।

मीमांसा

तीर्थ-यात्रा में जब लोमश ने यह कहानी युधिष्ठिर को बताना चाहा और कहा कि ऋष्य शृंग मृगी से पैदा हुए विभांडक के पुत्र थे, तब युधिष्ठिर ने कहा था-भगवन! ऋष्य शृंग मृगी के पेट से कैसे उत्पन्न हुए? मनुष्य का पशु योनि से संसर्ग करना तो शास्त्र और व्यवहार दोनों दृष्टियों से विरुद्ध है। बालक ऋष्य शृंग के भय से इंद्र ने पानी कैसे बरसा दिया?

वस्तुतः विभांडक ने किसी वनवासी युवती को गर्भवती कर दिया और उसी से ऋष्य शृंग बालक पैदा हुआ जिसे विभांडक ने पाला। ऐसी बातों को छिपाने के लिए लेखक-पंडित स्वर्ग से उर्वशी को ला घसीटता है, जो कहीं नहीं थी। मनुष्य जिस ढंग से पैदा होता है उसे सब जानते हैं। ब्राह्मण समाज अपनी धाक जमाने के लिए ऐसी कहानी लिखता रहा कि ब्राह्मण-कोप से अनावृष्टि हुई और ब्राह्मण के आने से वृष्टि हुई। ये दोनों बातें असत्य हैं। प्राकृतिक नियमों से वृष्टि-अनावृष्टि होती है और प्राकृतिक नियम जड़ हैं।

. जमदग्नि, पत्नी–रेणुका, पुत्र–परशुराम

युधिष्ठिर कौशिकी (कोसी) नदी, वैतरणी नदी, कलिंग (उड़ीसा) देश होते हुए महेंद्र पर्वत पर पहुंचे। जमदग्नि मुनि प्रसिद्ध थे। उन्होंने राजा प्रसेनजित के पास जाकर उनकी पुत्री रेणुका को अपनी पत्नी बनाने के लिए मांगा था। राजा ने दे दिया था। जमदग्नि रेणुका के साथ आश्रम में रहने लगे। उनके समय-समय पर पांच पुत्र हुए–रुक्मवान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम। परशुराम सबसे छोटे परंतु बलवान और साहसी थे। एक दिन रेणुका नदी पर स्नान करने गयी। उसने मार्तिकावत देश के राजा चित्ररथ को अपनी पत्नी के साथ नदी में जल-क्रीड़ा करते देखा, तो उसका मन उस राजा के प्रति मोहित हो गया। वह मानसिक विकार से पीड़ित होकर आश्रम पर आयी। जमदग्नि उसकी मानसिक दशा जानकर उद्विग्न हो गये, और कुपित होकर पुत्रों से कहा कि रेणुका का सिर काट लो। किसी पुत्र को यह साहस नहीं हुआ; परंतु अंततः छोटे पुत्र परशुराम ने अपनी माता रेणुका का सिर काट लिया।

इस पर जमदग्नि प्रसन्न हुए और परशुराम से उन्होंने कहा–जो तुम चाहो, वर मांग लो। परशुराम ने कहा–"मेरी माता जीवित हो जाय, जी जाने पर उसे मेरे द्वारा अपने मारे जाने की बात याद न रहे। उसको जो मानस पाप हुआ था, वह नष्ट हो जाय। युद्ध में मेरा सामना कोई न कर सके।" जमदग्नि ने परशुराम की सब कामनाएं पूरी कीं।

एक दिन जमदग्नि के सब पुत्र बाहर गये थे। अनूप देश का राजा कार्तवीर्य अर्जुन आ गया। आश्रम पर उसका सत्कार हुआ, परंतु वह बल के प्रमाद में जमदग्नि की कामधेनु गाय के बछड़े को बलपूर्वक हर लिया और आश्रम की वारी-फुलवारी को तहस-नहस कर दिया। परशुराम आश्रम पर आये, तो जमदग्नि ने सब बातें कह सुनायीं। परशुराम कुपित हो गये। वे सहस्रार्जुन पर धावा बोल दिये और उसे मार डाले।

सहस्रार्जुन के मारे जाने पर उसके पुत्र परशुराम पर कुपित हो गये, और वे जमदग्नि के आश्रम पर धावा बोल दिये। परशुराम उस समय नहीं थे, फलतः जमदग्नि मार डाले गये। परशुराम जब आश्रम पर आये तब पिता जी की लाश पड़ी हुई देखे। दुखित हुए। उनका दाह-संस्कार किये। परशुराम ने क्षत्रियों को मारने की प्रतिज्ञा की और उन्होंने "इक्कीस बार क्षत्रियों को मारकर पृथ्वी को सूनी की और उनके रक्त से पांच गहरे सरोवर भर दिये।" यही जगह कुरुक्षेत्र

. **त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभु।**
समन्तपंचके पंच चकार रुधिरह्रदान् वन. ,

में समंत पंचक कहलायी । इसी रक्त से परशुराम जी ने अपने पितरों का तर्पण किया।

जब युधिष्ठिर महेंद्र पर्वत पर गये, तब परशुराम जी ने उनको दर्शन दिया (अध्याय -)।

मीमांसा

ब्राह्मण लोग क्षत्रियों की कन्याएं पत्नी बनाने के लिए मांगते रहते थे और क्षत्रिय देते रहते थे। मानसिक विकार होने मात्र से रेणुका का सिर काटने की आज्ञा देना और सिर काटना अजीब मनुष्यता है। जिसका सिर कट गया है, मर गया है, वह जी नहीं सकता। परशुराम को वर देने वाले जमदग्नि स्वयं को मौत से बचा न सके। सहस्रार्जुन तो उद्दंड था ही, परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन करके रक्त से पांच गहरे सरोवर भर कर कौन-सा करुणा और मनुष्यता का परिचय दिया! यह अतिशयोक्ति ब्राह्मण-क्षत्रिय-कलह को प्रतिबिंबित करती है।

. प्रभास क्षेत्र में यादवों का मिलना, च्यवन की कहानी

युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा में हैं। वे दक्षिणी भारत के तीर्थों में घूमते हुए पश्चिमी भारत के समुद्र के पास प्रभास क्षेत्र में पहुंचते हैं। वहां यादव लोग आते हैं जिसमें मुख्य श्रीकृष्ण, बलराम आदि भी हैं। सब लोग धृतराष्ट्र की निष्ठुरता, दुर्योधन की दुष्टता और पांडवों की दुखद दशा देखकर दुखी हैं। बलराम ने कहा कि धृतराष्ट्र पता नहीं किस पाप से आज अंधे हैं। अब पांडवों को राज्य से निष्कासित कर आगे पता नहीं क्या गति पायेंगे? सात्यकि ने तो दुर्योधन पर हमला करने के लिए जोरदार व्याख्यान दे डाला।

इसके बाद च्यवन मुनि की बात आ जाती है। वे तप कर रहे थे। उनके चारों तरफ दीमकों ने मिट्टी का धूह (बांबी) बना दिया था। राजा शर्याति को चार हजार पत्नियां थीं, परंतु उनको संतान के नाम पर केवल एक कन्या थी, जिसका नाम था 'सुकन्या'। वह सखियों के साथ वन में विहार करने गयी। मिट्टी की धूह में कुछ चमकता हुआ देखा, तो उसमें कुतूहल-वश कांटा चुभो दिया। वस्तुतः वह च्यवन मुनि की आंख थी। च्यवन कुपित हो उठे। उन्होंने अपने योग बल से राजा शर्याति तथा उनके सैनिकों की टट्टी-पेशाब बंद कर